ब्रह्मलीन श्री १०८ स्वामि परमानन्द जी महाराज के वैदिक सदुपदेश

भाग पहला

गणेश पूजन-प्रातःस्मरण-ओंकार व्याख्या व अन्य उपदेश

भाग दूसरा

अमरकथा

संकलन कर्ता व प्रकाशक
हरिराम शर्मा, २सी/१२ न्यू रोहतक रोड, नई दिल्ली-५

दूसरा संस्करण ५५०
अक्तूबर १९७५

मूल्य :
१०८ गायत्री जप
व स्वाध्याय

श्री महाराज जी के वैदिक सदुपदेश—भाग पहला पृ० १-३७
गणेश पूजन, प्रातः स्मरण, ऊँकार व्याख्या पृ० १-२५
पं० रघुनाथ स्वामि नरेला द्वारा प्रणीत सन् १९११
प्रथम संस्करण—उनके पिता पं० भावर सिंह स्वामि द्वारा
प्रकाशित सन् १९१२ अन्य उपदेश पृ० २६-३७
भाग दूसरा—अमर कथा पृ० ४९—१७६
अपने पिता पूज्य पं० लक्ष्मण दत्त जी गौड, पानीपत निवासी
की पुण्य स्मृति में हरिराम शर्मा द्वारा प्रकाशित ।। २०-१०-७५
१९२६ गुरु पूर्णिमा सं० २०३२ श्री गुरु चरणोंमें समर्पित ।

गुरु स्मरण— उनके सत्संग में जब भी हम जाते थे ।।टेक।। १

मीठी वाणी से सत्कार करते थे वो,
करुणा दृष्टि से चिन्तायें हरते थे वो ।
भाग दिल से हमारे सारे ग़म जाते थे ।।१।।

कैसा अद्भुत विलक्षण था उनका कथन,
शान्त हो जाते वहां जाके हम सब के मन ।
भाग द्विविधा भरम एक दम जाते थे ।।२।।

प्रबल युक्तियां थी मनोहर वचन,
उनके उपदेश से भगवत में लगती लगन ।
शब्द सद्गुरु के नस २ में रम जाते थे ।।३।।

करते हरीकीर्तन खुद कराते हमें,
शब्द द्वारा अलख को लखाते हमें ।
घन की नाईं बरस करके थम जाते थे ।।४।।

परोपकार सम्बन्धी होती जो बात,
उसको स्वीकार करते थे तज पक्ष पात ।
ऐसी बातों पर फौरन ही जम जाते थे ।।५।।

करते निन्दा किसी की न स्तुति बड़ी,
शान्त और मग्न रहते थे वो हर घड़ी ।
मोहन खण्डन के मारग में कम जाते थे ।।६।।

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्द विग्रहम् ॥
यस्य सांनिध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनुः ॥

ब्रह्मलीन श्री १०८ स्वामी परमानन्द जी महाराज

(यह रंगीन चित्र श्री ऋषि राम शर्मा ने अपने शर्मा प्रिंटिंग प्रेस ४-बी देवनगर में छपवाकर अर्पण किया)

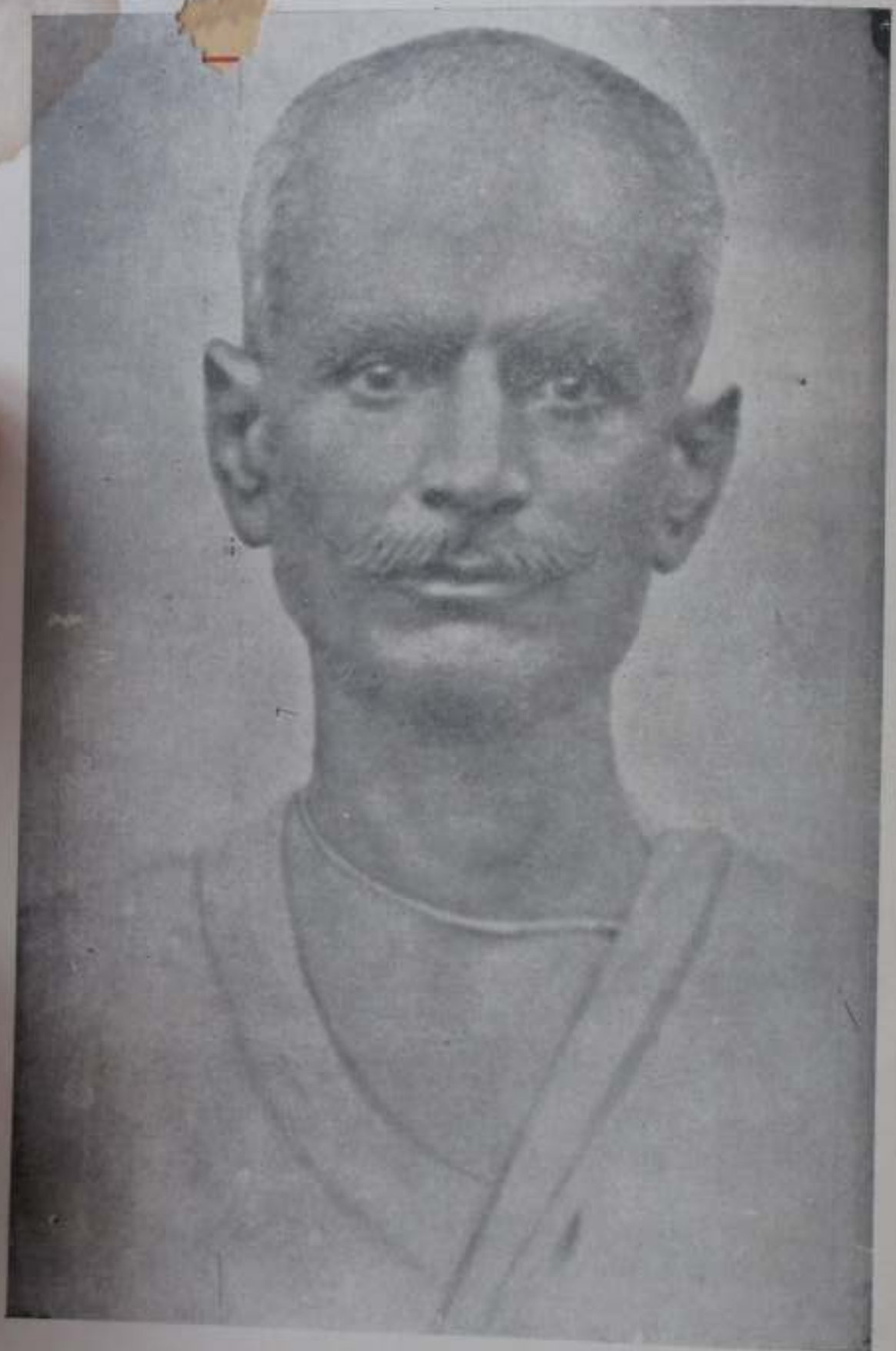

स्व० श्री प० लक्ष्मण दत्त गौड, पानीपत निवासी
सन् १८७६-४१ (पृ० ८ ६, ११-भूमिका)
(पिता श्री हरिराम शर्मा, २सी/१२ न्यू रोहतक रोड, नई दिल्ली-५

भूमिका

पाँच हजार से कुछ अधिक वर्ष हुए, भारत माता ने एक लोकरंजक पूत जाया था। नाम था उसका कृष्ण। ऐसी मन-मोहिनी लीलाएँ कीं उसने, कि आज भी श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध को पढ़-पढ़ कर कन्हैया की लीलाओं का स्मरण-चिन्तन करते हुए भक्तजन गद्-गद् हो जाते हैं।

और जो सौभाग्य उस रत्नप्रसू भारत जननी को तब प्राप्त हुआ वही अब इस कलियुग में भी पुनः प्राप्त हुआ और एक और ऐसे ही नर रत्न को जन्म दिया इस भाग्यशालिनी माता ने, नाम था जिनका परमहंस स्वामी परमानन्द जी। इन स्वामी परमानन्द जी महाराज की लीलास्थली प्रायः तीस वर्ष तक हरियाणा की भूमि रही और इनकी कृपा से हरियाणा में कई स्वर्गोपम आश्रमों का निर्माण हो गया जिनमें श्री भगवद्-भक्ति आश्रम, रामपुरा, रेवाड़ी तथा श्री भगवद् भक्ति आश्रम, जींद प्रमुख है। श्री महाराज ने इन आश्रमों को केन्द्र बनाकर अनेक मनोहारिणी लीलाएँ और अनेक परोपकार के कार्य किये। इन लीलाओं को सुनते और पढ़ते समय वही आनन्द मिलता है भक्तों को, जो भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं को सुनने और पढ़ने में मिलता है। उन लीलाओं का आनन्द लेने के वास्ते अवश्य पढ़िये **'श्री परमानन्द स्मृति कण'** जिनके भूमिका-लेखक हैं प्रयाग के सन्त प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, तथा डिमाई आकार में ४५६ पृष्ठों तथा ३० चित्रों से सुसज्जित प्लास्टिक कवर युक्त आकर्षक मुख पृष्ठ वाले इस ग्रन्थ का मूल्य है केवल २५ रुपये मात्र। प्राप्ति स्थान १-श्री ओंकार नाथ अग्रवाल

२-श्री भगवद् भक्ति आश्रम रेवाड़ी। ३-श्री भगवद् भक्ति आश्रम, जींद।

पर इन लीलाओं के श्रवण और पठन का माहात्म्य होने पर भी, तब तक यह आनन्द अधूरा है जब तक इन महानुभावों के सदुपदेशों पर आचरण करते हुए मनुष्य स्वयं भी उस आनन्द के सागर की ओर नहीं चल पड़ता। और संस्कारी जनों को इस ओर बढ़ाना ही प्रस्तुत पुस्तिका का लक्ष्य है। श्री हरि राम जी शर्मा स्वयं श्री महाराज जी के सानिध्य में रह चुके हैं। वे उनकी अनेक लीलाओं के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं। उन्होंने उनके अनेक उपदेश उनके ही श्रीमुख से सुने हैं। अतः श्री हरिराम जी के द्वारा सम्पादित श्री महाराज जी के वेद उपनिषद् विषयक उपदेशों का यह संग्रह जिज्ञासु भक्त समुदाय के लिए अवश्य उपयोगी हो सकेगा ऐसा इन पंक्तियों के लेखक का विश्वास है। आप इन्हें पढ़ें, इनका मनन करें और इनसे लाभ उठाएँ।

बड़ा बाजार, शिकोहाबाद (उ० प्र०) — विनीत,
मार्ग शीर्ष शुक्ला २/२०३१ — **ओंकारनाथ अग्रवाल**

———

उनका एक पत्र

शिमला ११.९.३२

सबके पत्र आये हम जल्दी ही आने का यत्न करेंगे। अमुक २ को पढ़ना चाहिये। बहुत प्रसन्न रहना, अश्राम का काम करना, परमेश्वर का भजन करें। रात को सत्संग और भगवान का भजन करें। भजन गावें—पांच चार भजन रोज गावें—परमेश्वर के नाम का संकीर्तन यही सार है और सब असार

है। ध्यान करो, भजन प्राणायाम करो। प्रार्थना के साथ-साथ परमात्मा पर पूरा विश्वास रक्खो। परमेश्वर हर एक जगह और हर एक वस्तु में विराजमान है। वह बड़ा दयालु कृपालु सहायता करने वाला है। वह क्षमास्वरूप सब की भूल चूक क्षमा करने वाला दयालु है। उसको नमस्कार करो। धन्यवाद दो। "ॐ तत्सत्" मन्त्र कह कर खाओ पीवो, जो कुछ भी काम करो उससे पहले "ॐ तत्सत्" मन्त्र कह लिया करो। ज्योतिस्वरूप प्रकाशस्वरूप परमात्मा का सुनहरी प्रकाश आँखें मींच कर दशवें द्वार में भ्रूकुटी में देखा करो। वा उसकी भावना किया करो। परमात्मा अपने बाहर और भीतर सब जगह छाया हुआ है। उसके सिवा कुछ नहीं—ऐसी भावना किया करो। क्षण मात्र भी ऐसी भावना मोक्ष प्राप्ति का साधन है। "ॐ निरंजन रंकार प्रभु सोऽहं सत्य नाम करतार" यह मन्त्र भी जब तब कहा करो—बहुत नींद लगे तब सोवो और बहुत भूख लगे तब खाओ और यह समझो कि हम सब कुछ भगवान के लिए कर रहे है और उन्हीं की प्रेरणा से कर रहे है। पढ़ना, लिखना, परोपकार करना उत्तम कर्म हैं। सब आपस में निमंत्रण दे, खाएँ पीयें। बहुत प्रेम से बातें करें। दुख दर्द में सहायता करें सहानुभूति रखें,—सबको मन लगाकर सच्चे दिल से उनके दुख दूर करने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। अमुक-२ के दुख को दूर करे यह प्रार्थना करनी चाहिए। खूब भगवान का भजन कर—"सर्वे सन्तु निरामयाः" ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

[श्री महाराजजी द्वारा "आश्रमों का निर्माण" अन्त के पृष्ठ पर देखे]

———

ॐ

संक्षिप्त परिचय

परम पूज्य श्री १०८ स्वामी परमानन्द जी महाराज एक ब्रह्मलीन महापुरुष थे। आप सवा सात फीट लम्बे अत्यन्त कृश शरीर के थे। आपके हाथ बड़े लम्बे थे, आप की कलाइयाँ गोड़ों तक आती थीं। खादी की चादर और एक चोला आपका परिधान था। मस्तक उन्नत तथा तेजोमयी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें सब को मोहित करने वाली थी। मुखमंडल प्रशावशाली था। मुख पर हर समय आत्म-प्रसाद झलकता था। आप सदैव प्रसन्नचित, निर्द्वन्द्व और ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म दर्शन के आनन्द में निमग्न रहा करते थे। बोलते समय आप "आनन्द के बीच में" बार-बार कहा करते थे। आपके पास आने वाले भी एक परम विचित्र आनन्द की लहर का अनुभव करते थे। आपकी पवित्र मुस्कान तथा अनुग्रह भरे नेत्रों में एक विचित्र आकर्षण शक्ति थी। बड़े-बड़े त्यागी, योगी तथा कपट भाव से आये हुए मनुष्य भी, आपके सामने नतमस्तक होकर आपका अनुग्रह चाहा करते थे। आपका दर्शन सत्संग पाकर अनेकों ने घर बार छोड़कर संन्यास धारण कर प्रतिष्ठा प्राप्त की। अन्तरयामी रूप से आप सैंकड़ों मील दूर से हृदय की प्रार्थना तुरन्त सुनते थे तथा भक्तों का कष्ट दूर करके उनकी मनोकामना पूरी करते थे। मृत्युग्रस्त प्राणियों को जीवनदान भी दिये। आपके वचनसिद्ध थे। साधारण वार्ता में भी मुख से निकले वचन सत्य होते थे। आपके दर्शन अमोघ थे। उनके दर्शन

मात्र से आनन्द प्राप्त होता था। पाप दूर होते और अन्तःकरण स्वतः निर्मल हो जाता था। अपने उपदेश में आप श्रोताओं के मन में उठी शंकाओं का बिना पूछे ही उनकी ओर मुख करके उत्तर दे जाते थे; दूसरों को इस का ज्ञान भी नहीं होता था। प्राचीन काल के देश विदेश के महापुरुषों की बातों अथवा घटनाओं को आप अपने उपदेश के बीच में इस प्रकार बता जाते थे कि मानों अभी वहाँ से बातें करके ही आये हों। सृष्टि के आरम्भ से ऋषियों की प्रणाली तथा उनके द्वारा यूरोप साइबेरिया तथा भारत में राज्यों के स्थापना की घटनाएँ तथा परम्पराएँ ऐसे बतला जाते कि बड़े-बड़े विद्वान् भी आश्चर्य-चकित होकर पूछते रह जाते थे कि ये कौन से इतिहास की बातें हैं जो अब उपलब्ध नहीं। ब्रह्मज्ञानी पुरुष को सब कुछ हस्तामलकवत् ही तो होता है। आप जो भी काम कराते, करते, या रक्षा करते वह सब उनका एक लीला विनोद ही होता था, और कभी अपने आप को प्रगट नहीं होने देते थे श्रेय दूसरों को या दवा इत्यादि को ही देते थे।

शरीर द्वारा यह सब कुछ करते हुए भी आप मन की एक विशेष स्थिति में रहा करते थे। चरणों की जूती निकल जाती तो भक्त लोग कह कर पहनाया करते। एक बार नीम के उबलते पानी में चरण लटका कर आप निर्द्वन्द्व बैठे रहे, सेवक भूमानन्द ने देखकर कहा तो पैर पानी से निकाल लिया। चरण में फफोले पड़ गये, देहली के डाक्टर रघुनाथ ने आकर पूछा कि आप को पानी गरम नहीं लगा तो बड़े भोलेपन से बोले कि हमें तो भूम ने कहा था कि पानी तैयार है। ऐसी अनेकानेक घटनाओं से उनकी ब्रह्मलीन स्थिति का पता चलता है। उनकी, लीलाएँ, निष्काम परोप-

कार के महान् कार्यों का कारण ही तो बनती थीं। आपको गरीबों का बड़ा ख्याल था। नेत्रों में काँटा लगने पर सुप्रसिद्ध डा० मथुरा प्रसाद ने स्वयं आकर मोतिया का आँप्रेशन किया। तब से ही उनकी आज्ञानुसार डा० मथुरा प्रसाद द्वारा आँखों के मेलों में निःशुल्क मोतिया बिन्द के आँप्रेशन प्रचलित हो गये तथा निःशुल्क नेत्र चिकित्सालय खोले गये गरीब अन्धों के बीसियों मेले कराये, हजारों अन्धों को आँखें मिलने लगीं। आश्रम में आदर्श गोशाला देश के लिये एक आदर्श ही बन गई। हजारों अकाल पीड़ित गायों को अनेक बार यमुना के बेले में भिजवा कर उनकी रक्षा कराई। गोवंश की उन्नति पर वे सर्वदा बहुत जोर दिया करते थे। स्त्री शिक्षा के लिये इस क्षेत्र में पहली कन्या पाठशाला आश्रम में १९१८ में खोली गई। आप को अछूतों से बड़ा प्रेम था। उसी वर्ष अछूतों तथा दलितों के उद्धार के लिए आश्रम में एक अछूत पाठशाला भी प्रारम्भ कराई और गाँवों में अछूतों पर लगी सब पावन्दियाँ समाप्त कराकर उन्हें बराबरी का व्यवहार प्राप्त कराया। उनकी भजन मण्डलियों द्वारा उन में भगवान की भक्ति जाग्रत् की, यहाँ तक कि उनकी भजन मण्डली को देहली में प्रिन्स आफ़ वेल्ज़ के जलसे में भेजकर हजारों,अछूतों को ईसाई होने से बचाया। आश्रम में एक औषधालय भी खोला गया। आश्रम सब परोपकार कार्यों का उत्पत्तिस्थान तथा केन्द्र माना जाता था।

इस प्रकार सैकड़ों स्त्री पुरुष २५-३० वर्ष तक श्री महाराज जी की सेवा में रहने पर भी, उनकी आयु तथा जन्म स्थान अज्ञात सा ही रहा। हाँ, समय-समय पर कुछ संकेत अवश्य प्राप्त होते रहे। जैसे १९१९ में आश्रम में आये काशी के एक

ब्रह्मचारी द्वारा काशी में उनकी विचित्र लीलाओं का समय सन् १९१९ से २५ वर्ष पूर्व सन् १८९४ का निर्धारित होता है। उस समय वे निर्द्वन्द्व, ब्रह्मलीन पूर्ण स्थिति में जंगल में अज्ञात रूप से रहते थे। उनके परम भक्त, पुराने शिष्य नरेला निवासी बहरे बाबा नारायणदत्त जी ने बताया कि १८९८ में मुझे पता लगा कि अम्बाला, दीनाजपुर में एक सिद्ध महा-पुरुष आये हैं। मैंने सबसे पहले वहां पर ही उनके दर्शन किये और कृतार्थ हो गया। १९१२ में हरिद्वार से लौटते समय लँढौरा स्टेशन पर रेलगाड़ी में याद राम (आगे चलकर स्वामी दयानन्द जी) को श्री महाराज जी ने स्वयं बताया कि १४ वर्ष पहले अर्थात् (१८९८ में) इस स्टेशन से परे जंगलों में पत्ते फूल खाकर हम नग्न रहा करते थे, शरीर काला केवल चमड़ी और हड्डी मात्र रह गया था। यहाँ हलवाहों ने नग्न देखकर हमें एक चादर उढ़ा दी और वहाँ राजपूतों के गाँव में चार वर्ष ठहरे तथा फिर अम्बाला दीनाजपुर (१८९८ में) होते हुए गुरदासपुर की पहाड़ियों में भ्रमण करते रहे। इन बातों से पता चलता है कि आप की तपस्या तथा पूर्ण ज्ञान प्राप्ति का समय १८९४ से पूर्व का ही हो सकता है। सन् १९०६ में पालम में कल्लू नामक बढ़ई के आग्रह करने पर आपने बताया कि बरसाने की कदम खण्डी से परे एक ग्राम का, गौड ब्राह्मण कुल का हमारा जन्म है, पर ग्राम का नाम तो हमें याद नहीं आ रहा। जींद के भक्त किशोरी लाल सराफ को भी ठीक इतनी ही बात बताई थी। हाँ, आश्रम में फत्ता रासधारी ने पूछा कि आप तो ब्रज के हैं। हमारे पूर्व पुरुषों में से तो नहीं हो, उसे भी जब केवल यही बताया, थातब उसने कहा कि वहाँ बाईं ओर तो नन्दोला ग्राम है। आपने कहा कि हाँ हम नन्दोला के हैं। वह बोला कि वहाँ

तो सब गोसाई हैं तो आपने कहा कि एक दो घर गौड ब्राह्मणों के भी हैं। एक बार बहुत आग्रहपूर्वक पूछने पर सरकस कर्त्ता पं० राम मूर्ति को भी व्रज का गौड ब्राह्मण वंश का ही अपना शरीर बताया था। यह बात उनके मुखारबिन्द से निकली हुई है, दूसरी प्रचलित बातें उन्होंने अपने मुख से कभी नहीं कहीं। केवल इधर-उधर के कथन से अनुमान मात्र कर लेना विश्वसनीय नहीं है।

अब उनकी आयु के सम्बन्ध में कुछ सुनिये। जींद के भक्त किशोरी लाल ने बताया कि एक बार बात करते-करते आपने कहा था कि गुग्गापीर या जाहरपीर हिन्दू साधु थे, मुसलमानी जमाने में साधुओं को पीर कहते थे, उनकी समाधि हिसार के पास भुट्टू में है, हम ने भी उसके व्याह के चावल खाये हैं। भक्तों ने आश्चर्य से पूछना चाहा कि यह बात तो २००-२५० वर्ष पहले की होगी तो बात गुम कर दी। मेरे बड़े भाई जयराम उनके लाडले सेवक थे, "अक्षर पद का विचार" के भजन के बारे में उसने एक बार पूछा कि महाराज जी यह भजन तो आपका लगता है परन्तु इस में आपका नाम नहीं है। इस पर आप बोले कि हाँ भाई यह हमारा ही है यह रामदास के शरीर में बनाया था। जयराम ने आचर्श्य से पुनः पूछा कि समर्थ गुरु रामदास ? वह तो शिवाजी के गुरू थे तो आपने बात गुम कर दी। १९३६ में रिपन हस्पताल में शिमला के अंग्रेज डाक्टरों ने बताया कि आपके हाड इतने बेडोल हो गये हैं कि आपकी आयु कम से कम २००-२५० वर्ष होनी चाहिए। ऐसी हड्डी तो २०० वर्ष पहले के मनुष्यों की ही हो सकती है। एक बार पिता जी (स्व० पं० लक्ष्मणदत्त जी) ने आश्रम से आकर बताया कि श्री महाराज जी अपने उपदेश के प्रवाह में बता गये कि यह उनका नौवाँ शरीर है। यें सारी

बातें आपकी लम्बी आयु के बारे में कुछ संकेत दे सकती हैं। दो महात्माओं के प्रमाण और सुनिये। पिता जी (पं० लक्ष्मण दत्त) का जन्म पानीपत के एक सिद्ध पुरुष बाबा शिवगिरी के दिये गए एक आम के प्रसाद से हुआ था। ६ वर्ष की आयु में, मेरे बाबा जी की मृत्यु होने से आप बाबा शिवगिरी की संरक्षता में ही पले। बाबा शिवगिरी जी ने, समाधि लेने का समय आने पर, सबको मुँह माँगे वरदान दिये। पिता जी से भी उन्होंने कहा कि तू भी जो चाहे सो माँग ले। पिता जी ने कहा कि आप मुझे ऐसा ज्ञान दें जिसको जान कर और कुछ जानने की आवश्यकता न रहे और वह वस्तु दें कि जिसे पाकर और कुछ लेने की कामना न रहे। बाबा जी बोले कि भाई यह चीज तो हमारे पास है नहीं, पर हम यह आशीर्वाद देते हैं कि तुझे समाधि लगानी आ जाएगी। इतना और है कि तुझे बड़ी उमर में एक महात्मा मिलेंगे, वे सर्व-समर्थ हैं वे दे सकते हैं यह चीज, उनसे मांगना। उनका संकेत श्री महाराज जी की ओर ही था, यह बात आगे की घटना से प्रमाणित होती है। सन् १९१४ में दिल्ली पंचकुइयाँ के अखाड़े की सिद्ध लटूरिया माई से पिता जी ने यही माँगा। वह बोली कि यह वस्तु तो मेरे पास नहीं। फिर क्षण भर को आँख बन्द करके पुनः कहा कि तुझे ऐसे समर्थ महात्मा मिले हुए तो हैं, वे ही दे सकते हैं यह चोज, उनसे मांग। समाधी तो तुझे लगानी आती है, अब और तुझे क्या चाहिए? पिता जी ने तब जाना कि बाबा शिवगिरी तथा लटूरिया भाई का संकेत श्री महाराज जी की ओर ही था। तत्पश्चात् उनकी कृपा सम्पादनार्थ आप निष्काम भाव से उनकी सेवा करने में तत्पर हो गये। और जींद, पालम, नरेला जा जा कर सेवा, दर्शन, सत्संग करने लगे।

श्रीमहाराज जी पहले पहल सन् १९०६ में जींद जंकशन

पर पधारे। रेलवे के बाबुओं ने दर्शन मात्र से उन्हें उच्च कोटि के सन्त जानकर उनकी इच्छानुसार रेलवे लाइनों से परे एकान्त में एक फूस का छप्पर डाल कर ठहरा लिया। फिर क्या था, दो मील परे जींद शहर से अनेक सज्जन तथा बड़े-बड़े अहलकार सत्संग करने आने लगे। एक मास यहाँ ठहर कर आप गोदावरी कुम्भ पर चले गये। वहीं से लौट कर आप नारनोल रेवाडी से पालम उतरे। पैर में तकलीफ होने से आप दो ढाई मास पालम ठहरे। यहाँ एक ब्राह्मण गुरु ने दर्शन करके पालम वालों को बताया, यें तो सिद्ध पुरुष हैं, मैंने इनके पंजाब में दर्शन किये थे, इनकी लीला का कुछ पता नहीं चलता, इनकी सेवा करो, ये तो सर्व-समर्थ है, अपने आपको छिपाये रखते हैं। फिर तो पालम में खूब सत्संग होने लगा।

आप एक स्थान पर कम ठहरते थे। भ्रमण ही अधिक करते थे। फिर आप जींद पधारे, शहर के पास बनखण्डी महादेव पर ठहरे। गौशाला पर महाराजा जींद ने भी आपके दर्शन किये। एक बार के सत्संग से ही महाराजा बड़े प्रभावित हुए और बोले कि सन्त तो लम्बे बाबा है। वें प्रार्थना करके श्री महाराज जी को नहर के किनारे कोठी पर ले गये – वहां राजनीति पर श्री महाराज जी का दिव्य उपदेश सुनकर वें बोले कि इस प्रकार तो देश स्वर्ग बन जाएगा। फिर आपको संगरूर बुलाकर अपने बाग में ठहराया। वहाँ चुपचाप उनका एक फोटो भी ले लिया जो खड़ा कम्बल वाला है। अपने अरदली राम प्रताप (स्वर्गीय महात्मा प्रतापानन्द) को उनकी सेवा में छोड़ दिया—जिसने घर बार छोड कर १२-१५ वर्ष उन के साथ रह कर सेवा की—वहाँ से पालम होते हुए श्री महाराज जी सन् १९०७ में रेला पधारे। बहरे बाबा ने सन् १८९८ में दर्शन तो कर ही रखे थे। उन्हें अपने

यहाँ आया हुआ देखकर वे कृतार्थ हो गये और तन्मय होकर सेवा करने लगे । वहां के पं० झांवर स्वामी ने अपने पुत्र रघुनाथ के वास्ते प्रार्थना की कि वह लाहौर में ईसाइयों के चक्कर में पड़ गया है । श्री महाराजजी ने उसे बुलाकर अनेक वैदिक उपदेश लिखवाकर छपवाये । उन उपदेशों से प्रभावित होकर वह तो घर छोड़कर जंगल में रहने लगे और ब्रह्म-निष्ठ होकर खूब प्रतिष्ठा पाई । फिर श्रीमहाराज जी जींद के पास रामराय (रामहृद) नामक तीर्थ पर एक देवी के मन्दिर में एक महीने ठहरे । तीर्थ सर्पों से और कमलों से पूर्ण था कोई स्नान भी नहीं कर पाता था । भक्तों ने इसके लिये प्रार्थना की । आप ने कृपा की, मूसलाधार वर्षा से तीर्थ उभल गया और सारे सर्प तथा कमल बह गये, तीर्थ पवित्र हो गया । भक्तों की देखी एसी अनेक अद्भुत लीलाएँ अब भी सुनने में आती हैं । जींद के एक माने हुए मुसलमान ने आपको साक्षात् औलिया अनुभव किया । वह तो उनके पलंग के पास ही नमाज पढ़ने लगा । वहां के मुसलमान भी सत्संग में आने लगे । भ्रमण करते करते रेवाड़ी भिवानी झज्जर बुआना रोहतक होते हुए १९०९ में आप पानीपत पधारे । वहां पिता जी को आपके दर्शन हुए, पर सेवा का अवसर थोड़ा ही मिला । वहाँ बोली शाह कलन्दर के मजार पर मुसलमान पीरों के आग्रह करने पर "सातों रंग निरखता" का एक ख्याल श्री महाराज जी ने अर्थ सहित सुनाया । वे पीर बोले भाई यह कोई मामूली फकीर नही हूं, ये तो औलिया है । सेवा मान की झंझट देखकर आप वहां मे चल दिये और पालम पहुँचे । पालम तो आप का हैडक्वाटर सा बन गया था । यहां तो घूम फिर कर आप आते ही रहते थे । और पूछने पर भ्रमण वृत्तान्त सब बता देते थे । वहाँ के स्वर्गीय महात्मा दयानन्द जी

ने अविवाहत रहकर अपना जीवन उनकी सेवा में अर्पण और १९३७ से जीवन प्रयत्न नेत्र सुधारक में निर्देशक रहे।

मनुष्य मात्र के कल्याण और उद्धार के लिये तथा माया ग्रसित सांसारिक आत्माओं को सत्संगामृत पान कराने के लिये आप भ्रमण ही अधिक किया करते थे। भक्त लोग स्थान-स्थान पर उन्हें ढूँढते ही फिरते थे। राव बहादुर कैप्टिन राव बलवीर सिंह जो अहीर वाटी के एक बड़े जागीरदार थे आप शुद्ध अन्तःकरण के, धर्म भाव से युक्त साधु सेवी पुरुष, थे महल के नीचे ही साधुओं के ठहरने व खाने का अलग प्रबन्ध कर रखा था—बाबा भगवानदास जी उनके पास ही आकर ठहरते थे और गौओं के वास्ते चन्दा भी ले जाया करते थे, आपने ही श्री महाराज जी से प्रार्थना की कि राव जी भक्त श्रद्धालु और बड़े जागीरदार हैं। यदि उनको आपका सत्संग प्राप्त हो जावे तो उनके द्वारा देश का बड़ा उपकार हो सकता है। बाबा भगवानदास के सकाश से ही १९१४ में राव जी ने स्टेशन पर आपके दर्शन किये। महल में ठहराया, एक दिन ठहर कर आप चले गये। राव जी तो एक दिन के दर्शन सत्संग से ही मुग्ध हो गये। सब कुछ भूल कर पागल की तरह से बार-बार पालम, जींद, नरेले जा-जा कर श्री महाराज जी से रामपुरा आने की प्रार्थना करते। श्री महाराज जी कभी दो चार दिन के लिए आ जाते थे। राव जी को इस थोड़े समय के दर्शन लाभ से तृप्ति नहीं होती थी। १९१५-१६ में राव जी ने भीम गोडा हरिद्वार जाकर आपसे रामपुरा चलने की प्रार्थना की। दलीप सिंह और राव छाजू राम जी भी साथ थे आप बोले कि यह प्राचीन काल से तपो भूमि है यहां ऋषि मुनि फल फूल खाकर तपस्या किया करते थे। दर्शन करने वालों से दोषों को छोड़ने तथा सद्गुणों को ग्रहण करने का प्रण

कराया करते थे। म० विशुद्धानन्द ने [क्षेत्र बनवा दिया। पेट भर भोजन मिल जाता है। तपस्या तो खत्म हो गई। हां बद्री, केदार, गंगोतरी की तरफ चट्टियों पर यात्री व महात्माओं के भोजन की व्यवस्था से तो बहुत उपकार हो गया। अब यहां पंड़े लोग बैंगन पेठा आदि छुड़वा कर दान लेते हैं, ऐसी तपो भूमि में आप सब, कुछ प्रण करो,—अच्छा सत्य बोला करो। राव जी ने कहा कि सांसारिक व्यवहार में पड़े हुए मनुष्य के लिए यह मुश्किल है। हाँ आपके सामने कभी झूठ नहीं बोलूंगा तब श्री महाराज जी बोले अच्छा तो परोपकार ही किया करो। यह आज्ञा दी और फिर बोले कि हमारा खर्चा तो बहुत है, तेरे पास क्या है? राव जी ने कहा कि जमीन, गाँव, मकान, जेवर सब है इन सबको बेच दूँगा। इन सबके पीछे फिर क्या करेगा? आपने परीक्षा ली। तो राव जी ने कहा कि इनके समाप्त हो जाने पर भिक्षा माँग कर सेवा करूँगा। इस पर आप बोले कि यदि ऐसी बात है तो हम आ जावेंगे। कुछ दिन पीछे श्री महाराज जी रामपुरा पधारे, गांव के बाहर जंगल में शमशान के पास एक छतरी में आप ठहर गये। वहाँ पर ही सत्संग आनन्द की झड़ी लगती थी। फिर आप जींद पालम नरेला भ्रमणशील ही रहे। राव जी ने छतरी के पास शीघ्र ही एक मकान बनवाकर आपको लेने पालम पहुँचे। पालम के भक्तों ने विनयपूर्वक वहीं ठहरने की प्रार्थना की कि यहां सुन्दर आश्रम बन रहा है। सारी सुविधाएँ हैं। आप बोले हमारा खर्चा तो बहुत है। उन्होंने खर्चा उठाने का पूरा आश्वासन दिया। श्री महाराज जी ने पुनः कहा कि राव जी तो जागीरदार हैं, आप लोगों के वास्ते यह बड़ा बोझ होगा। कुछ दिन पीछे आप रामपुरे आ गये और जंगल में बनाये मकान में रहने लगे। राव बहादुर, भक्त नन्द किशोर आदि

सत्संगी सज्जनों के प्रार्थना करने पर देश सेवा के कार्य के लिये आप आश्रम निर्माण करते हुए स्थायी रूप से वहीं टिक गये। राव बलवीर सिंह जी स्वयं भी परिवार सहित अधिकतर आश्रम में ही रहते हुये उनकी लीलाओं में तन्मय हो जाते थे। १९१८ में आश्विन शुक्ला पूर्णिमा की शरद पूर्णिमा के दिन आश्रम की स्थापना की गई। खीर का कढ़ाया चान्दनी में रखकर रात्री भर सत्संग कीर्तन की ध्वनि से स्थान पवित्र और निर्भय बना दिया—आश्रम का विस्तार होने लगा। आश्रम विस्तार के साथ-२ राव जी अधिकाधिक भूमि दान करते गये। शनै-शनै नौ सौ बीघे भूमि और एक "डालियाकी" गाँव आश्रम को दान देकर अपने को धन्य माना। श्री महाराज जी के द्वारा रेवाडी आश्रम से पहले, पालम, जींद और दादरी में भी आश्रमों की स्थापना हो चुकी थी।

भक्तों का आगमन—१९०६ से स्थान-स्थान जिनको ढूँढते फिरते थे, अब उन्हें स्थायी रूप से रामपुरा आश्रम में पाकर भक्तों की भीड़ की भीड़, रासधारी, कीर्तन मंडलियाँ, टोलियाँ बना बना कर आश्रम आने लगी। दर्शन सत्संग से चौबीसौ घण्टे आनन्द ही आनन्द बरसने लगा। आने वालों को स्वर्ग अथवा सतयुगका अनुभव होता था। आश्रम श्री महाराज की दिव्य लीलाओं का क्रीडास्थल बन गया। आश्रम कन्याओं, महिलाओं, ब्रह्मचारियों, बान प्रस्थियों, संन्यासियों तथा सत्संगियों से पूर्ण हो गया। राव बलवीर सिंह जी के इस अनुपम दान व त्याग तथा महान प्रयास के फलस्वरूप श्री महाराज जी एक स्थान पर ठहर पाये और अनेक भक्तों तथा सत्संगियों को श्री महाराज जी के स्थायी रूप से दर्शन-सत्संग प्राप्त हो सके और प्राचीन शैली का एक दिव्य आश्रम का निर्माण हो गया। जिसका आनन्द केवल दर्शन गम्य ही है।

आश्रम में ही 'भक्ति प्रेस' चालू किया जहां से भजन, ज्ञान, भक्ति, आदि की पुस्तकें छपकर वितरण होती थीं। प्रेस से भक्ति नाम की मासिक पत्रिका में दिव्य उपदेशों द्वारा वेदों तथा उपनिषदों के जटिल स्थलों की व्याख्या छपती रहती थी। एक बार भक्ति पत्रिका में शंकराचार्य के चार मठ और संन्यासी सम्प्रदायों के लेख देखकर उत्तरकाशी के कुछ महात्माओं को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने आपत्ति उठायी कि इन बातों को गुप्त रखने का ही आदेश है। वे अपनी बात पर बल देने के लिए आश्रम में पधारे और श्री महाराज जी के दर्शन व सत्संग पाकर कृतार्थ हो गये और कहने लगे कि आप तो सर्व-समर्थ महापुरुष हैं। आपको तो सर्व अधिकार है। इस प्रकार के उद्‌गार प्रगट करते हुए वे प्रसन्न मन वापस चले गये। प्रेस से और भी बहुत सा धार्मिक साहित्य प्रकाशित होता था। इन प्रकाशनों में वेद उपनिषद व गीता के जटिल स्थलों की सरल व्याख्या होती थी तथा अनेक रहस्य के विषय भी श्रद्धालु जनता को सुलभ कराए जाते थे। आपका ख्याल था कि हिन्दुमात्र का एक मंत्र होना चाहिये—वे सब को गायत्री मंत्र का उपदेश दिया करते थे। लाखों गायत्री मंत्र की पुस्तकें छपवाकर वितरण कराईं।

किन्तु महापुरुषों के दर्शन सत्संग आदि का वास्तविक लाभ तो तभी है जब उनके उपदेशों का अध्ययन तथा मनन किया जाए और उनके अनुसार अपने जीवन को भी ढालने का प्रयत्न किया जाए। श्री महाराज जी तो स्वयं ब्रह्मलीन थे। उनकी वाणी से स्वाभाविक रुपेण ओंकार की तथा केवल एक ब्रह्म की उपासना के उपदेश ही निकला करते थे। आप देवी देवताओं के पूजन, स्नान, फल फूल, धूपदीप, चन्दन व प्रसादादि तथा रामायण भगवतादि के पारायण की प्रेरणा देने की बजाय

गीता, रामायण (तुलसी कृत तथा बाल्मीकीय), भागवत, महाभारत आदि के मार्मिक स्थलों से सैकड़ों श्लोक, चौपाई दोहे तथा स्तोत्र आदि कण्ठस्थ कराते थे तथा उनका शास्त्रार्थ वाद विवाद कराते हुए विनोद करते थे। जिससे भक्ति सत्संग, ईश महिमा तथा ब्रह्म-चिन्तन के भाव जाग्रत हो तथा बढ़ते जाएं। शिव मन्दिर आदि स्थान तो जंगल में महात्माओं के ठहरने के वास्ते बनने ही चाहिएं। जिनको वाटिका, कूप आदि से सुशोभित करके पवित्र रखना चाहिए ऐसा ही उनका आदेश था। आप कीर्तन सत्संग में रामकृष्ण महादेव की महिमा के भजन स्तोत्रों द्वारा भक्तों को ज्ञान भक्ति, प्रेम में मस्त कर दिया करते थे। रेवाड़ी आश्रम में लिखवाये ब्रह्म की उपासना के वैदिक उपदेश, ज्ञान धर्मोदेश, वेदोपनिषद्, परमानन्दामृत, गायत्री, गीता, मनुस्मृति सार आदि अनेकानेक पुस्तकों में तथा भक्ति के अंकों में उपलब्ध है। परन्तु ऐसे ही उपदेश आपने सन् १९०७ में नरेले में रघुनाथ स्वामी को लिखावा कर ओंकार व्याख्या, गायत्र्यर्थ प्रकाश, मूण्डकोपनिषद्, गणेश पूजन, प्रातः स्मरण अमरकथा आदि पुस्तकों में छपवाए थे। वे अब सर्व सुलभ नहीं हैं। इस पुस्तक "वैदिक सदुपदेश" में उनकी पुनरावृत्ति ठीक-२ का यत्न किया गया है। ब्रह्मलीन महापुरुष अपनी टीकाओं में ब्रह्मोपासना की जटिल ग्रन्थियां सहज में ही खोल देते हैं। जिसमें मन की सारी शंकाएं निवृत्त हो जाती हैं। यदि अधिकारी व जिज्ञासु भक्तों को इससे तनिक भी लाभ प्राप्त हुआ तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।

विनीत,
हरि राम शर्मा
(महिमानन्द)

२सी/१२ न्यू रोहतक रोड,
नई दिल्ली-५—१५.१२.७४

॥ ओ३म् ॥

॥ श्रीगुरुचरण कमलेभ्यो नमोनमः ॥

गणेश पूजन

ओ३म् गणानां त्वा गणपतिं हवामहे, प्रियाणां त्वा-प्रियपतिं हवामहे निधिनांत्वा निधिपतिं हवामहे वशोमम आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥यजुर्वेद०॥

भाषार्थ—गणों में अर्थात् समूहों में, पालक स्वामीको, आप परमेश्वरको, हम ग्रहण करते हैं, प्रिय पदार्थों मे अर्थात् इष्ट मित्रों मे आपको परम मित्र, स्वीकार करते हैं, कोषों मे आप को, निधिपति, स्वीकार करते हैं, हे परमेश्वर सबके निवास स्थान, मेरे सब ओर से जानने वाले हो, मैं आपको गर्भवत् धारण करने वाला जानूं चारों ओर से आप जानने वाले हो, गर्भवत् सब को धारण करने वाले हो ॥१॥

शुद्ध अन्तः करण और सच्चे हृदय वालों से भेद उपासना कभी हो ही नहीं सकेगी। जैसे एम. ए. CLASS के विद्यार्थी का जी मिडिल CLASS वालों की पुस्तकों में लग ही नहीं सकता। परन्तु हाँ जो लोग सदा के लिये निचले दर्जे की उपासना का पेशा बना लेते हैं वह अनर्थ करते हैं॥

पूर्वोक्त मन्त्र में परमपिता परमेश्वरने गणेश अर्थात् गण-पतिकी पूजाके विधानका निर्देश सर्वजीवों के प्रति किया है न जाने इसका क्या कारण है, जैसा कि हमारे सनातन धर्म्मावलम्बियों में प्रचलित है यह प्रथा भारत वर्ष मे सामान्य प्रचलित ही नहीं बरंच प्रत्येक हिन्दू मात्रके शुभ कार्य्यारम्भ होने में इस मन्त्र से हमारे सनातनी पंडित गणेश पूजा करते हैं, परन्तु इस गणेश के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ जैसे प्रतीत होते है

क्योंकि अन्य धर्म्मावलम्बियों के यह आक्षेप हैं और सर्वसाधारण मनुष्य भी विस्मित हैं कि गणेश पार्वती का पुत्र रुद्रपिता चतुर्भुजी गजानन लम्बोदर अर्थात् बड़े पेट का मूषक उनका बाहन इत्यादि उपाधि संयुक्त पुराणो मे गणेश वर्णन किया है न जाने इसका क्या कारण है यहीं नहीं वरंच उमाके मल से अयोनिज उत्पत्ति महादेव के विवाह मे गणेश पूजा का विधान इत्यादिक वार्ता अस्तव्यस्त अर्थात् असम्भव प्रतीत होती है, और जो मन्त्र मे गणपति शब्द आया है वह निराकार निर्विकार निरंजन निरामय सच्चिदानन्दानन्त सर्व शक्तिमान जगद्गुरु सर्व पालक सब देवों के देव महादेव का नाम आया है जैसे गणसंख्याने से गणपति शब्दकी सिद्धि मानते हैं अर्थात् (गणानामीशः गणेशः गणानां पतिः गणपतिः) परन्तु योगी इसको सम्यक् प्रकार से जानते हैं। योगकी पुस्तकों मे इस देव को योगी परमेश्वर प्राप्ति होने का प्रथम साधन कथन करते हैं जैसे—

आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासान्त वर्णाश्रयम् ।
स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकरसमं वालान्तषट्पत्रकम् ॥१॥
रक्ताभं मणि पूरकं दशदलं डाद्यं फकारान्तकम् ।
पत्रैः द्वादशभि रनाहत पुरं हैमं कठान्ता वृतम् ॥२॥
पत्रैः सस्वर सोडशैः शशधर ज्योतिर्विशुद्धाम्बुजम् ।
हंसेत्यक्षर युग्मकं द्वयदलं रक्ताम्भमात्राम्बुजम् ॥३॥

अर्थ—मूलाधार मे कुण्डलिनी देवी सहित गणेश अधिष्ठात्रि देवता है। यह शिव संहिता हठ योग प्रदीपिका गोरख पद्धति आदि ग्रन्थों में और कबीर गरीब दासादि महात्माओं ने बड़े उच्च भाव से वर्णन किया है।

मूल कमल दल चतुर बखानो कलिङ्ग जाप लाल रंग मानो,
देव गणेश तहाँ रूपा थाणो ऋद्धि सिद्धि चवँर ढुलारा है।

अर्थ—मूल कमल अर्थात् आधार चक्र चार दलका वर्णन किया है कलिङ्ग क्लिं जाप सुखरूप परावाणी यहीं से जानी जाती है इसके ही ध्यान से मनुष्य को अनुभवज्ञान होता है वेदवाणी यहीं से उत्पन्न होती है इसी हेतु से यह कहा है कि **'वन्दे वाणी विनायकम्**, इस आधार रूपी कमलका मानो रक्त वर्ण है यह समष्टि रूप का आत्मा अर्थात् सांसारिक चक्रवर्ति राज्य ऐश्वर्य्य सम्पत्ति आदि सिद्धि अणिमादि अष्टसिद्धि पतंजल योगानुसार चवँर ढुलाती हैं इसी हेतुको लेकर गणेश पूजन से अर्थात् वेद वाणी के अधिष्ठान रूपी केन्द्र से परावाणी मे से परिवर्तित हुआ शब्द पश्यन्ति वाणी होता हुआ योगियों के अनुभव गोचर होता है और परमात्मा का रूप है वहां गुरु अपने आप है जो स्वरूप से प्रेम द्वारा अधिकारी पुरुषों को आकर्षण करते रहते हैं कि इस महल मे अपना प्यारा है जिसकी कि स्वरूप रश्मिकी स्वरूपता पोड़श वर्ष के कुमारों मे इतस्ततः प्रतीत होती है परन्तु तुम अपने प्यारे को इन नेत्रों से जभी देख सकते हो जब इन चार शत्रुओं को नितान्त छोड़दो वे ये हैं प्रथम काम बुरी कामना जैसा कि महात्मा कबीर जी कहते हैं काम काम सबको कहै काम न जाने कोय, जेतीमनकी कामना काम कहावें सोय ॥ स्त्री प्रसंग की इच्छाको काम कहते हैं इस में सर्व सहमत हैं यह सर्व पापों की जड़ है जैसा कि भगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता मे कहा है ॥

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेन मिह वैरिणम् ॥

अर्थः—काम और क्रोध रजोगुण से उत्पन्न होते हैं यह सब पापों की जड़ इस जीव को जन्म मरण रूपी दुख देने वाले जानः—

धूमेना ब्रियते वन्हिर्यथाऽऽदर्शो मलेनच ।
यथोल्वेना बृतो गर्भस्तथा तेनेद माबृम् ।।

अर्थ—धूमेन-वन्हिः-आब्रियते, जिस प्रकार धूम्र से अग्नि ढकी हुई होती है, च-यथा-आदर्शः-मलेन,-और जैसे दर्पण मल से आच्छादित होता है, यथा उल्वेन गर्भः, इसी प्रकार जेर से गर्भ अर्थात् बच्चा (आबृतं) ढका हुआ है, तथा तेन इदं, उसी प्रकार उस काम से यह गणेश रूपी देवता और परा वाणी का आधार अनन्त सच्चिदानन्द स्वरूप अपना आप (आबृतं) ढका हुआ है, **पाप्मानं प्रजहिह्येनं ज्ञान विज्ञान नाशनम् ।** हे अर्जुन ! इस ज्ञान विज्ञान के नाश करने वाले पापी को निश्चय कर के जीतो तीसरी अध्याय के अन्त में जगद्गुरु भगवान् यही कहते हैं,**जहि शत्रुं महावाहो कामरूपं दूरासदम् ।**

हे लम्बी भुजाओं वाले अर्जुन कामरूपी दुर्धर्ष शत्रु को जीतो । यही अविनाशी योग पहले मैंने वैवस्वत् को कहा था। विवस्वान्ने मनु से कहा मनुने ईक्ष्वाकुको कहा, काम का जीतना ही योग को सिद्धि का महत् हेतु है यदि हम काम लोक के सर्व तत्वों को सम्यक् प्रकार से न भी जानते हों परन्तु यह अवश्य-मेव मानना पड़ता है कि एक काम ही है जो विष्णु का एक-लोता बेटा है जो प्रवृति मार्ग मे अत्यन्त आवश्यक है परन्तु निवृति मार्ग में वह महा विघ्न प्रतीत होता है । इसके क्षय और वश में करने के लिये काम रिपु शिव शंकर महादेव की शरण में जाना पड़ता हैं क्योंकि वे ही निवृत्ति मार्ग के नेता हैं । उनके मस्तक पर द्वितीय का चन्द्रमा यह सूचित करता है कि अब अन्धकार मय पक्ष नष्ट हुआ आओ दोज का चांद देखो इसी प्रकार परमेश्वर की ओर बढ़ो जिस प्रकार ओषधेश्वर क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होता है ऊपर चढ़ने मे कठिनाइयों के कारण

मन्द गति होती है, इसी लिये मन्द गति करने वाला इनका बाहन बैल हैं, यह नन्दी गण मृत्यु के मुख से विरूपाक्ष ने प्रमोचन किया जब से इनको प्रत्येक स्थान पर बाहन का कार्य देने लगा और प्रवाहक शक्तियों मे कृत कार्यता लाभ की। यह समष्टि ब्रह्माण्ड का मन है इस पर काम ऋषु शिव आरूढ होते हैं तब इसके जन्म मरण का मूल उच्छेद होकर परमानन्द अनन्त की प्राप्ति, त्रिविधा दुःखकी अत्यन्त निबृत्ति अर्थात् अभाव हो जाता है यही सर्व शास्त्र और सर्व मतों का सिद्धान्त सार्व भौम धर्म है। जिसको न जान इन्द्र चन्द्र ब्रह्मा आदि ऋषि, स्त्री रूपी माया के जाल मे फंसकर कपोतों की सदृश अधः पतन होकर क्लेशित और व्यथित हुए। राज राजेश्वर सम्राट् रेणुकणों मे अर्थात् धूली मे रुल गए परन्तु पवित्र भूमि आर्य वर्त भारत के सूर्य श्रीपरशुराम रघु रामचन्द्र लक्ष्मण भारद्वाज मेधनाद महावीर श्रीयुत हनुमान गुड़ाकेश धर्म दिवाकर राज ऋषि श्रीभीष्म पितामह जैसे हो चुके हैं। जिन्होंने काम देव को संसार रूपी रण भूमि मे पराजितकर देश से निकालकर ब्रह्मचर्य का इष्ट ईश्वरीय ज्ञान अनुभव अर्थात् वेद वाणी का नाद सर्व दिशाओं मे घोषित कर दिया। ऐसे ही पुरुष गणेश के वास्तविक तत्व को जान सकते हैं। वे सब जीवों मे गणपति को बुलाते हैं, पूजते हैं, मानते हैं। प्रिय पदार्थों मे, इष्ट मित्रों में, विद्याआदि रत्नादि के कोशों मे, सब मे और सब को धारण करने वाला उसी गणेश विघ्न विनाशक ज्योतिः स्वरूप को मानते हैं तथा च श्रुतिः,

एक मेवाद्वितीयं ब्रह्म, सर्वं खल्विंद ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन। मृत्युंच मृत्युं गच्छति इह नानेव पश्यति ?

अर्थ—एक अद्वितीय तत्व है निश्चय करके सर्व ही यह ब्रह्म हैं, मृत्यु से वह मृत्यु को प्राप्त होता है जो यह नाना भिन्न

भाव देखता है, संक्षेपतः तात्पर्य यह हैं कि गुदा और लिंग के मध्य मे सूक्ष्मस्नायु परस्पर मिलती हुई स्थूल शिराओं से सम्बन्धित संघात को प्राप्त हुई हैं वहां एक कमल का सा आकार बन गई हैं इससे कतिपय दूरी पर अण्ड कोष के भागों के ऊपर कामदेव का बासा है। इस के अधः मज्जा तन्तु मूषक के आकार को धारण किये हुए हैं यहां का प्रकाश कई सूर्य और चन्द्र के सामान योगी वर्णन करते हैं यह प्रकाश शिराओं में मूर्तिमान जैसा बन गया है चार दलों में चतुर्भुज त्रिकोण योनि की ओर उदर के सदृश नाड़ी योनि के मध्य मे ग्रथित हैं सिद्धासन द्वारा वाम पाद की एडी द्वारा योनि पीड़ित की जाती हैं और ग्रीवा उग्र और सम शरीर अर्थात् सीधा बैठकर आज्ञा चक्र मे भृकुटियों के मध्य जब ध्यान किया जाता है तब शिवाक्षि मे ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। तब ब्रह्म रन्ध्र मे से अमृत झरने लगता है और अशुद्ध मल कफ पिंघल कर नेत्र और नासिका द्वारा झरने लगता हैं और गजमुख की आकृति होने का यह कारण हैं कि जिस मे मूलाधार का प्रकाश अधिष्ठान रूप से वर्तमान हैं वहां शब्द उत्पादक नाड़ियें इसी प्रकार विद्यमान हैं यह गणेशलोक अर्थात् गणेश देवता महान् पवित्र मूलाधार की नाड़ियों द्वारा ही दृष्टि गोचर होता है जिस प्रकार शरीरस्थ सूक्ष्म जीव खुर्दबीन अर्थात् सूक्ष्म वीक्षण यंत्र द्वारा देखे जा सकते हैं। इनकी माता भी गौरी उमा पार्वती आदि माना है गौरी वेद वाणी का नाम निघण्टु में आया है उमा परमेश्वर को प्रकाशित करने वाली बुद्धि का नाम तवलकार मे कथन किया है। इसी से विद्वान् पुरुष जान सकते है कि इस देव के पूजने से और ध्यान से विघ्यनाश हो सकते हैं और कोई प्रकार नहीं

॥इति गणेश पूजने समाप्तम् ॥

प्रातः स्मरण

(कीर्तन, जप, ध्यान मंत्र)

ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं ब्रह्म संस्थितम् ॥

सोऽहमर्कमयं ज्योति रात्म ज्योति रहं शिवः ।
आत्म ज्योति रहं शुक्र सर्व ज्योति रसोरम्यहम् ॥

ज्योति रहं—ज्योतिरहम् ।

(श्रीमहाराज जी की हस्त लिखित कापी से)

मैं स्वयं ज्योति हूँ सर्व गुणों से रहित हूँ अत एव मेरे को पाप नपीं छू पाते—मैं ब्रह्म स्थिति को प्राप्त हो जाऊँ अथवा ब्रह्म रूप हो जाऊं ।

सूर्य में प्रकाश मैं हूं—आत्म ज्योति कल्याण स्वरूप पुरुष मैं ही हूँ बल वीर्य युक्त जो आत्म ज्योति है वह मैं हूं सम्पूर्ण ज्योतियों में, रस रूप अहं भाव से जो आत्मा विराजमान हैं वह मैं हूं ।

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुर दात्म तत्वम्,
सच्चि त्सुखं परमहंस गतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्न जागर सुषुप्तिमवैति नित्यं,
तद् ब्रह्म निष्कल महं नच भूत संघः ॥१॥

प्रात समय मैं उस आत्म तत्व का जो सच्चित् सुख स्वरूप से हृदय मे स्फुरित है जो परमहंसों की गति है, जो तुर्य्या पद (जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति से परे) है। स्मरण करता हूं जो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का साक्षी तथा नित्य है वह निष्कल ब्रह्म मैं हूं, यह पांच भौतिक संघात (शरीर) मैं नहीं हूं ॥१॥

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं,
वाचोविभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेतिनेति वचनै र्निगमाववोचं
स्तंदेव देव मज मच्युत माहुग्रयम् ॥२॥

मैं प्रात समय उस देवों के देव का जो मन का वाणी का विषय नहीं, जिसके अनुग्रह से सब वाणी (वाणी उपलक्षित इन्द्रियां) प्रकाशित होती है, जिसको नेति नेति से श्रुति कहती है जिसको वेद वेत्ता, अच्युत और सबसे श्रेष्ठ कहते हैं भजन करता हूं ॥

प्रातर्नमामि तमसः परमाक वर्णम्
पूर्णं सनातन पदं पुरुषोत्तमारव्यम् ।
यस्मिन्निदं जगद शेष मशेष मूर्तौ
रज्वां भुजंगम इव प्रति भाति तं वै ।.३॥

मैं प्रात समय उस पुरुषोत्तम को जो अज्ञान रूपी अन्धकार से परे, परम प्रकाश स्वरूप पूर्ण सनातन पद है जिस अशेष मूर्ति में यह सब जगत् रज्जु में सर्प की नाई भान होता है नमस्कार करता हूं। (इस प्रातः स्मरण से चित्त की शुद्धि होती है 'इसे सब महात्मा जन करते रहे हैं, इसका पाठ प्रत्येक पुरुष को अवश्य करना चाहिये) ॥इति॥

लोकेश चैतन्य मयाधिदेव मागल्य विष्णो भवदाज्ञयैव ।
हिताय लोकस्य तव प्रियार्थमँसंसार यात्रा मनुवर्तयिष्ये ॥४॥

अपने इष्टेदेव, सबलोको के स्वामी, चेतन स्वरूप, कल्याण स्वरूप, सबके धारण, पीषण व रक्षा करने वाले विष्णु भगवान की प्रेरणा से, मैं लोक हित के लिये, आपकी प्रसन्नता व कृपा के वास्ते, इस संसार के कार्य्यों में प्रवृत होता हूं ।

॥ ऊँकार व्याख्या ॥

यः शब्द स्तदोमित्यक्षरं यदस्या ग्रतं
शान्तमशब्दमभयमशोकमानन्दं तृप्तं
स्थिरमचलममृतमच्युतं ध्रुवं विष्णुसंज्ञितं
सर्वापरत्वाय तदे त्युपा सीत ॥ एवमाह
योऽसौपरा परोदेव ओंकारो नाम नामतः ।
निःशब्दः शून्यभूतस्तुमूर्घ्निस्थानेततोऽभ्यसेत् ॥

भावार्थ—ओं यह जो अक्षर है, सोही शब्द ब्रह्म है, और उस प्रणव रूपी, अक्षर के नाद का जो अन्तिम स्थान है, सोही शान्त, निर्विशेष, अभय अशोक आनन्द रूप तृप्त स्थिर अचल अमृत अच्युत निश्चल शब्द विष्णु नामक पर ब्रह्म है। मुमुक्षु इन सर्व लक्षण युक्त पर ब्रह्म की उपासन करे। ऐसा कहा है जो पर और अपर ब्रह्म है सो ओंकार है। जो निःशब्द शून्य है उसको ब्रह्म रन्ध्र में उपासना करे ॥

तद् ब्रह्म तमसः परमपश्यत् । यदिदमस्मिन्नादित्येऽथ सोमेऽथ विद्युति विभाति । खल्वेनं दृष्टवाऽमृतत्वं गच्छति। ध्यानमन्तः परे तत्वे लक्ष्येषु विनिधीयते । अतो विशेष विज्ञानं विशेषमुपगच्छति । मानसेच विलीनेतु यत्सुखं चाऽऽत्म साक्षि कम् । तद् ब्रह्म चामृतं शुक्रं सागतिर्लोक एव सः ।

जो ब्रह्म आनन्द स्वरूप अन्धकार से परे है, जो सूर्य में चन्द्र में और विद्युत में अर्थात् (बिजली में) अग्नि में प्रकाशमान है, उसे देखकर अमृत तत्व को प्राप्त होता है। इस सर्वान्तर पर ब्रह्म तत्व के ध्यानार्थ पहले शरीर मन तथा प्रणव के लयस्थान का ध्यान करे। इस ध्यान से जो अस्फुट अनुभव है वह स्फूट (प्रत्यक्ष) होता है। मनके लय होने पर जो स्वसंवेद्य सुख है वही ब्रह्म है, वही अमृत है वही शुद्ध है, वही गति है, वहा लोक है।

निद्रेवान्तर्हितेन्द्रियः शुद्धितमयाधिया स्वप्न इव यः पश्यतीन्द्रियबिलेऽवि वशः प्रणवाख्यं प्रणेतारं भारुपं विगत निद्रं विजरं विमृत्युं विशोकंव सोऽपि प्रणवाख्यः प्रणेताभारुपो विगत निद्रो विजरो विमृत्युर्विशोको भवतीत्येवं आह। एवं प्राणमथोकारं यस्मात्सर्वमनकेधा। युनक्ति युञ्जते वापि तस्माद्योग इतिस्मृतः। एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैवच। सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते।

भावार्थ—सुषुप्त पुरुषों की नाई इन्द्रिय वृत्ति से रहित, स्थूल देहाभिमानको त्याग कर स्वप्न में जैसे हो वैसे जो शुद्ध बुद्धिसे प्रणव नामक अन्तर्यामी प्रकाश स्वरूप, निद्रा से परे, जरा मृत्यु शोक रहित होता है ऐसा कहा इस प्रकार (आत्मा) तथा ओंकार में अनेक प्रकार से कोई स्थूल सूक्ष्म कारण जगत को लय करता है अथवा इनके लय स्थानों में आत्मानुसन्धान करता है उसको योग कहते हैं। प्राण, मन तथा इन्द्रियों का एकत्व और सर्व क्रिया कारक फल में सत्य-बुद्धि का त्याग योग कहलाता है।

खल्वसौप्राणाख्यः प्राणसंस्पर्शेनोज्जवलति। अथ यद्-ज्वलत्ये तद् ब्रह्मणो रूपं चैतद्विष्णोः परमं पदं चैतद्रुद्रस्य रुद्रत्वमेतद परिमितधा चाऽऽत्मानं विभज्य पूरयतीमाँल्लोका नित्येवं ह्याह। वह्नेश्चयद्वत्खलु विस्फुलिङ्गाः सूर्यान्मयूखाश्च-तथैव तस्य। प्राणादियोवै पुनरेवतस्मादभ्युच्चरन्तीह यथा क्रमेण॥

यह प्राण नामक आत्मा चिदाभास से व्याप्त स्थूल सूक्ष्म देहोंको तपायमान करता हुआ उनसे संस्पृष्ट होकर जगत को प्रकाश करता है, यह प्रकाश करता ही ब्रह्म है। वही विष्णु का परम पद है, यही रुद्रका रुद्रत्व है, वही आपको अनेक प्रकार से विभक्त करके इन लोकों को पूर्ण करता है, ऐसा कहा है। जैसे

अग्नि से विस्फुलिङ्ग अथवा सूर्य से किरण निकलते हैं वैसे ही इस आत्मा में प्रलय काल में लय हुए प्राणादि सृष्टि काल में यथाक्रम निःसृत होते हैं।

ब्रह्मणोवावैतत्तेजः परस्यामृतस्य अशरीरस्यौष्यमस्यै तद् घृतम् ॥ अथाऽऽवि सन्नभसि निहितं वैतदेकाग्रेणैवमन्तर्हृदयाकाशं विनुदन्ति यत्तस्य ज्योतिरिव संपद्यतीत्यतस्तद्भावमचिरेणैति । हृद्याकाशमयं कोशमानन्दं परमालयम् । स्वंयोगस्ततोस्माकं तेजश्चैवाग्नि सूर्ययोः ॥

भावार्थः—यह जो उत्कृष्ट अमृतरूपी अशरीरी परमात्म तेज स्पर्श से शरीर में प्रतीत होता है उसका यह शरीर घृत है। वह तेज प्रत्यक्ष रूप से निश्चय करके हृदयाकाश में स्थित है। उस हृदयाकाश का योगी एकाग्र मन द्वारा साक्षात्कार करके उस तेज को जो उसके अन्दर है साक्षात्कार करे। तदनन्तर वह थोड़े ही कालमें उस तेज के साथ-साथ एकी भाव को प्राप्त होता है। इसी प्रकार जब चित्तसहित चिदाभास ज्योति रूप में ब्रह्म में लय हो जाता है तो फिर उत्पत्ति आदि को ग्रहण नहीं करता जो हृदयाकाश मयकोश है। वह आनन्द रूप है वही परम स्थान है वही हमारा स्वरूप है। वही योग है वही अग्नि तथा सूर्य में तेज है।

ओंकार प्लवेनान्तर हृदयाकाशस्यपारं तीर्त्वा ब्रह्मशालं विशेत्तत्तश्चतुर्जालं ब्रह्मकोशं प्रणुदेद् गुर्वागमेनेत्यतः शुद्धः कूतः शून्यः शान्तोऽप्राणों निरात्माऽनन्तोक्षय्यः स्थिरः, शाश्वतोऽजः स्वतन्त्र स्वेमहिम्नि तिष्ठत्यतः स्वेमहिम्नि तिष्ठमानं दृष्ठवाऽऽवृत चक्रमिव संसारचक्रमालोकयतीत्येवं ह्याह ॥ षड्भिर्मासैस्तुयुक्तस्य नित्यमुक्तस्य देहिनः अनन्तः परमो गुह्यः सम्यग्योगः प्रवर्तते ॥

भावार्थः—(देह इन्द्रिय तथा उनके विषयों में अहं अभिमान को त्याग कर मान व कोध को मारकर) ओंकार रुपी नौका द्वारा हृदयाकाश के पार उतर कर ब्रह्माकार वृत्ति के आविर्भूत होने पर शनैः शनैः ब्रह्म शाला में प्रवेश करे। फिर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय चारों कोशों को जिन्होंने ब्रह्म को आच्छादन कर रखा है, गुरु शास्त्र उपदेश द्वारा भेदन करे, तदनन्तर शुद्ध, पवित्र, शून्य, शान्त, प्राण तथा मन से परे अनन्त अक्षय, स्थिर, शाश्वत, अज स्वतंत्र हो अपनी महिमा में स्थित होता है और अपनी आत्मा को स्वमहिमा में स्थित (लेकर) देखकर संसार के चक्र से मुक्त दूर से उसे देखता है, ऐसा कहा। जितेन्द्रिय तथा अभिमान शून्य नित्य मुक्त योगी को छः मासमें अनन्त परम गुह्य परमात्म प्राप्ति रूप योग सिद्ध होता है। रजो गुण तथा तमो गुण से विद्ध और अभिमान से जलते हुए पुत्र द्वारा कुटुम्ब में आसक्त प्राणि को कदापि नहीं प्राप्त होता है।

॥ इति स्मृति ॥

मुण्डकोपनिषद् (२-२)

आविः संनिहितं गुहाचरन्नाम महत्पद मत्रै तत्समर्पितम् । एजत्प्राण न्निमिषच्चयदेतज्जानथ सदसद्वरेण्य परं विज्ञाना-द्वरिष्ठं प्रजानाम ॥१॥

अर्थ—वह प्रकाश स्वरूप सबमें व्यापक, बुद्धि रुपी गुहा में विचरने वाला सबका महान, आश्रय ब्रह्म है जिसमें यह सब जंगम [चलनेवाले] प्राणी तथा निशेष व अनिमेष क्रिया करने वाले स्थित है ऐसा जो सब का आश्रय है वह मूर्त अमूर्त (स्थूल सूक्ष्म) सत् असत सब पदार्थों में ग्रहण करने योग्य है, सबसे श्रेष्ठ विज्ञान से परे विज्ञानात्मा पुरुष को तुम जानो ॥२॥

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणुचयस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च।

तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राण स्तदुवाङ् मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यँ सौम्यविद्धि ॥२॥

अर्थ—जो प्रकाश स्वरूप, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, जिसमें सब लोक तथा उसके निवासी स्थित है सो यह अक्षर ब्रह्म है सोई प्राण सोई वाणी सोई मन है वही सत्य वही अमृत है वही बेधने योग्य है उसे बेंधो अर्थात् लक्ष्य बनाओ ॥२॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरंह्युपासानिशितं संधयीत। आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यंतदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥३॥

अर्थ—उपनिषद् संबंधि महास्त्र धनुष को लेकर उसमें निरन्तर ध्यान से तीक्षण हुवे वाण को लगाकर और ब्रह्मगत भावना वाले चित्त से प्राणायाम द्वारा खींचकर हे सौम्य उसी अक्षर रूप लक्ष्य को बेधन कर अर्थात् जान।

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते।
अप्रमत्तेन बेधव्यं शरवत्तन्मयोभवेत् ॥४॥

अर्थ—प्रणव (ओंकार) ही धनुष है बुद्धि विशिष्ट (आत्मा) वाण है ब्रह्म उसका लक्ष्य है प्रमाद रहित चित्त होकर उस लक्ष्य को बेधन करो—बाणवत तन्मय हो जाय।

अस्मिन् द्यौपृथिवी चान्तरिक्ष मोतंमनः सह प्राणैश्च सर्वैः। तमेवैकं जानथ आत्मानमन्यावाचो विमुंचथ। अमृतस्यैष सेतुः ॥५॥

अर्थ—जिसमें द्युलोक पृथिवी अन्तरिक्ष तथा सब इन्द्रियों के साथ मन ओत प्रोत है उसी को एक आत्मा जानो, अन्य बातों को छोड़ दो क्योंकि यही आत्मा अमृतत्व, मोक्ष का सेतु (पुल) है ॥५॥

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाडयः सराषोन्त श्चरते बहुधा जायमानः। ओमित्येवँ ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पराय तमसः परस्तात् ॥६॥

अर्थ—रथ नाभि में अरों के समान जिसमें नाड़ियां प्रविष्ट हैं जहां वह परमात्मा बहुत प्रकार के, इंद्रियों द्वारा, कर्म करता हुआ भीतर हृदय में विचरता है उस आत्मा का ओ३म् इस परं पद वाचक तम' से अंधकार से परे होने के लिये ध्यान करो—उसकी प्राप्ति के लिये तुमको आशीर्वाद हो ॥६॥

यः सर्वज्ञ सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि ।
दिव्ये ब्रह्म पुरेह्येष व्योम्नात्मा प्रतिष्ठति ।
मनोमय प्राण शरीर नेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ॥
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपं अमृतं यद्विभाति ॥७॥

अर्थ—जो **सर्वज्ञ** और **सर्ववित** है [सामान्य और **विशेष** को जानने वाला है] जिसकी पृथिवी पर यह महिमा है वह यह आत्मा इस दिव्य ब्रह्मपुर [शरीर] अन्तर्गत आकाश [हृदयाकाश]में स्थित है विज्ञान स्वरूप है प्राण और शरीर का नेता मन उपाधि युक्त (स्थूल से सूक्ष्म शरीर, एक देह से दूसरे देह में ले जाने वाला] है—इस पार्थिव जगत में प्रत्येक प्राणी के हृदय को आश्रित करके स्थित है अन्न के परिणाम रूप हृदय अपनी बुद्धिरूप उपाधि से उसको धीर पुरुष श्रेष्ठ ज्ञान द्वारा परिपूर्ण देखते हैं जो आनन्द रूप अमृत स्वरूप प्रकाशता है वही ब्रह्म है ॥७॥

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥८॥

अर्थ—उस परमात्मा के पर तथा ऊपर दोनों का साक्षात्कार होने से हृदय की आविद्यक ग्रन्थि टूट जाती है सर्व संशय नष्ट हो जाते है और मुमुक्षु के सब कर्मों का क्षय हो जाता है ॥८॥

हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलं ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविद विदुः ॥९॥

अर्थ—उस ज्योतिमय हृदय (बुद्धि) कोष में अविद्या आदि तमोगुण से रहित निरवयव सर्वकलातीत ब्रह्म विराजमान है वही शुद्ध है वह ज्तोतियों का भी ज्योति है (प्रकाशक है) एसा वह जो है उसको आत्म वेत्ता जानते हैं अन्य कोई नहीं ॥

न तत्र सूर्योभाति न चन्द्र तारकं, नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्व मिदं विभाति ॥१०॥

अर्थ—उस ब्रह्म में सूर्य प्रकाश नहीं करता, चन्द्रमा और तारागण भी प्रकाश नहीं करते न यह विजलियां उसको प्रकाश करती है फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहां ठिकाना—उसी के प्रकाश को लेकर सब तेजो मण्डल प्रकाशित होता है—स्वयं नहीं, उसी के प्रकाश से इन सबका प्रकाश है ॥१०॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥११॥

अर्थ—(पूर्वोक्त) यह अमृत रूप ब्रह्म ही है पूर्व ब्रह्म था अन्त में ब्रह्म ही शेष रहेगा—दक्षिण की ओर और उत्तर की ओर नीचे और ऊपर भी यह ब्रह्म ही विस्तृत अर्थात् फैला हुआ है—यह सर्व जगत अत्यन्त श्रेष्ठ ब्रह्म ही है ॥इति मुण्डक उपनिषद्।

माण्डूक्योपनिषद

ओमित्येदक्षरमिदं सर्वंतस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्य दिति सर्वमोंकार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ॥१॥

अर्थ—ऊँ यह अक्षर ही सर्व नाम रूपात्मक जगतहै उसका उपाख्यान किया जाता है भूतव र्तमान और भविष्यत सब ओंकार है और जो कुछ त्रिकालातीत है वह भी ऊँकार ही है ॥

सर्वंह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥२॥

अर्थ—यह सब ब्रह्म ही है यह (हृदय रूपी गुहा में स्थित) आत्रा ब्रह्म है—सो यह आत्मा चार पाद[चार अवस्था Phase, State] वाला है।

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोन विंशति मुखः स्थूल भुग्वैश्वानरः प्रथमःपादः ॥३॥

अर्थ—उस आत्मा का जाग्रत अवस्था वाला, बाह्य विषयों में बुद्धि करने वाला, सात अंगों वाला (१. द्युलोक-मस्तक, २. सूर्य-नेत्र, ३. वायु-प्राण, ४. आकाश देह का मध्य भाग, ५. जल वस्ति—मूत्र स्थान, ६, पृथिवी-चरण, ७. (अग्नि-मुख) उन्नीस मुख वाला (पांच ज्ञानेन्द्रिय+, पांच कर्मेन्द्रिय*, पांच प्राण°°, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) मुख के समान उपलब्धि के द्वारों वाला, इस प्रकार स्थूल विषयों का भोक्ता वैश्वानर (सम्पूर्ण नरों को, अनेक प्रकार की योनियों में नयन [वहन] करने के कारण) आत्मा का प्रथम पाद है ॥

स्वप्न स्थानोऽन्तः प्राज्ञः सप्ताङ्ग एकोन विंशति मुखः विविक्ति भुक् तै जसो द्वितीय पादः ॥४॥

+ चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना त्वचा। (शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध-तन्मात्राएं)

* वाक, पानी, पाद, पायु, उपस्थ (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी पंच महाभूत)

°° प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान

अर्थ—स्वप्न स्थान में विचरने वाला अन्तरबुद्धि धारण करने वाला, सात अंगों वाला, उन्नीस मुखों वाला और (वासनामय) सूक्ष्म विषयों का भोक्ता है वह तैजस उसी आत्मा का दूसरा पाद है ॥

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकी भूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतो मुखः प्राज्ञस्तृतीय पादः ॥५॥

अर्थ—जिस अवस्था में सोया हुआ किसी विषय की कामना नहीं करता, न कोई स्वप्न देखता है वह सुषुप्ति है उस सुषुप्ति स्थान में एकीभूत हुआ प्रज्ञान घन स्वरूप आनन्द मय आनन्द का भोक्ता स्वप्नादि की प्राप्ति के प्रति ज्ञानस्वरूप चित्त ही इसका द्वार यानि मुख है प्राज्ञ आत्मा का तीसरा पाद है [भूत भविष्यत तथा सम्पूर्ण विषयों का ज्ञाता होने से ज्ञान मात्र ही इसका असाधारण रूप है इसलिये प्राज्ञ]

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोन्तर्यामि एषयोनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥६॥

अर्थ—यह प्राज्ञ ही सर्वेश्वर है—यही सर्वज्ञ है यह [1]सर्वान्तरयामी है सबका आदि कारण, सबका उत्पत्ति व लय स्थान है ॥

नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञान घनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यं मग्राह्यं मलक्षण मचिन्त्य मव्यपदेश्यमेकात्म प्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥

अर्थ—जो न अन्तः प्रज्ञ है न बहि प्रज्ञ है अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म

[1. समस्त प्राणियों के भीतर अनुप्रविष्ट होकर उनका नियमन करने वाला भी यही है]

दोनों को नहीं भोगता और जो दोनों भी नहीं, न सुषुप्ति का भोक्ता प्रज्ञान घन है न प्रज्ञ न अप्रज्ञ है—जो नेत्र का अविषय होने से अदृष्ट, ज्ञानेन्द्रियों का अविषय होने से अव्यवहार्य, कर्मेन्द्रियों का अविषय होने से अग्राह्य, सापेक्षता के अभाव से अलक्षण, अन्तःकर्ण का अविषय होने से अचिन्त्य, वाणी का अविषय होने से अव्यपदेश्य एकान्त के ज्ञान का सार है—उसमें प्रपंच का अभाव हो जाता है वह शांत, शिव, अद्वैत रूप (तुरीय) चतुर्थ पाद है वह आत्मा है वही जानने योग्य है ॥

सोऽयमात्माध्यक्षर मोंकारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्चपादा अकार उकारो मकार इति ॥८॥

अर्थ—सो यह आत्मा वाचक अक्षर को आश्रय करके प्रधानता से वर्णन किया जाने से अध्यक्षर है—वह अक्षर ओंकार है—वह ऊंकार पादो से विभाग किया हुआ, मात्रा को आश्रय करके विभागापन्न होने से अधिमात्रा है सो पाद ही मात्रा है और मात्रा ही पाद है अकार उकार मकार तीन मात्रा है ॥

जागरित स्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथम मात्रा आप्ते रादि मत्ताद्वा आप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥९॥

अर्थ—जागरित स्थान वाला वैश्वानर अकार व्याप्ति (क्योंकि अकार से सब वाणी व्याप्त है) और आदिमान होने से (क्योंकि विश्व सब का आदि है और अकार अक्षर आदि है इस समानता से) प्रथम मात्रा है जो ऐसा जानता है वह सब कामनाओं को प्राप्त होता है और सबका आदिमान (अग्रणी) होता है [अक्षराणामकारोस्मीति-गीता]

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रो त्कर्षादुभय-

त्वाद्वोत्कर्षति ह्व ज्ञान सन्तति समानश्चभवति । नास्याब्रह्म वित्कुले भवति य एवं वेद ॥१०॥

अर्थ—स्वप्न स्थान वाला उकार रूप तैजस दूसरी मात्रा है । उत्कर्षता से (क्योंकि ओंकार के उच्चारण करने में अकार से उकार उत्कृष्ट (दीर्घ) है) और उभयत्व (जैसे उकार, अकार और मकार के मध्य में स्थित है वैसे ही तैजस, विश्व और प्राज्ञ के मध्य में होने से दोनों ओर अभिमुख है । जो ऐसा जानता है वह ज्ञान की संतति को बढ़ाता है, और मित्र और शत्रु पक्ष में समान भाव वाला होता है । उसके कुल में कोई ब्रह्म ज्ञान रहित नहीं होता ॥

सुषुप्त स्थानः प्राज्ञो मकार स्तृतीया मात्रा मिते रपीतेर्वा मिनोति ह्वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥११॥

अर्थ—सुषुप्ति स्थान वाला जो प्राज्ञ है वह ऊँकार की तीसरी मात्रा मकार है—(जैसे विश्व (जाग्रत) तैजस (स्वप्न) प्राज्ञ सुषुप्ति में लीन हो जाते है उसी प्रकार अकार उकार उच्चारण के अंत के अक्षर मकार में लीन) एक हो जाते हैं उनको मापता है—जो ऐसा जानता है वह जगत को मापता है (यथावत जानता है) और जगत का कारण आत्मा बन जाता है ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवंवेद यरावं वेद ॥१२॥

अर्थ—चतुर्थ जो है वह सब मात्राओं से रहित ऊँकार तुरीय आत्मा ही है । वह सब व्यवहार से परे, प्रपंच की निषेधावधि वाला होने से शिव (मंगलमय) अद्वैत है ऐसा ओंकार आत्मा ही है—जो उसे इस प्रकार जानता है (उपासना करता है) वह आत्मा ही स्वतः अपने आत्मा में ही प्रवेश कर जाता है

॥इति माण्ड्क्योपनिषद् ॥

ओंकारं पादशोविद्यात्पादा मात्रा न संशयः। ओंकारं पादशो ज्ञात्वा न किंचिदपि चिन्तयेत ॥कारिका॥

अर्थ—ओंकार का एक एक पाद जानना चाहिये—जो पाद है वही मात्रा है इसमें संशय नहीं—ओंकार का एक एक पाद जानकर और कुछ चिन्तन न करे ॥

युंजीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम् । प्रणवे नित्य मुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित ॥कारिका॥

अर्थ—प्रणव में ही चित्त को लगावे—प्रणव ही निर्भय ब्रह्म है जो मनुष्य प्रणव में चित्त को लगाता है उसको कहीं भी भय नहीं है ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति, यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ एतद्धेव वाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम् । एतद्धेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्म लोके महीयते ॥कठ १–२–१५, १६, १७॥

अर्थ—सारे वेद जिस पद को कहते हैं समस्त तप जिस को बताते है जिसकी इच्छा से ब्रह्मचर्य्य करते है—उस पद को मैं तुमसे संक्षेप से कहता हूँ वह पद ओं है यही अक्षर अपर ब्रह्म है यह अक्षर ही परब्रह्म है इस अक्षर (उपास्य ब्रह्म) को जानकर जो (अपर अथवा पर) जैसी इच्छा करता है वही प्राप्त हो जाता है यही (ओंकार रूप) ब्रह्म प्राप्ति के सभी आलम्बनों में श्रेष्ठ (प्रसंशनीय) है यही परम आलम्बन है इसी आलम्ब को जानकर ब्रह्म में स्थित होकर महिमान्वित होता है, सब शास्त्रों में इसी प्रणवोपासना को मुख्योपासना माना गया है। यही प्रणबोपासना समाधि का मुख्य द्वार योग सूत्र में कहा है यथा **"ईश्वर प्रणिधानाद्वा"** ईश्वरोपासना से शीघ्र

समाधि लाभ होता है—कायिक, वाचिक, मानसिक सब व्यापारों को ईश्वर में अर्पण करना, उसी के ध्यान में मग्न होना और एक तान से उसका चिंतन करना यह ईश्वर प्रणिधान है ॥

क्लेश कर्म विपाकाशयैर परामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः ॥ अविद्यादि पंच क्लेश, रागादि जन्य शुभाशुभ कर्म, धर्माधर्म जन्य सुख दुख रूप फल, सुख दुख भोग जन्य विविध वासनाओं से असंबद्ध जो चेतन पुरुष है वही ईश्वर है ॥

तत्र निरतिशय सर्वज्ञ बीजम् ॥

उस परमेश्वर में सर्वज्ञता का कारण भूत जो ज्ञान वह निरतिशय अर्थात पराकाष्ठा रूप से विद्यमान है ॥

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात् ॥ वह ईश्वर पूर्व उत्पन्न हुवे ब्रह्मादि देवताओं का काल से अनवच्छिन्न होने के कारण गुरु है ॥

तस्य वाचक प्रणवः ॥ प्रणव ओंकार उस ईश्वर का वाचक है ॥ **तज्जपस्तदर्थ भावनम् ॥** उसका जप और उसके अर्थ का चिन्तन करना कर्तव्य है ॥ तथा यह नियम है कि

यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम् ॥ जैसा चित्त में होता है वैसा ही मनुष्य हो जाता है यह पुराणभेद है ॥ चित्त सदा परिणामि है जो विषय उसके सन्मुख आता है वह उसी रूप से तदाकार हो जाता है—इस नियम से जब ईश्वर में चित्त अर्पण किया जावे तो वह तदाकार हो जाता है—प्रणव और ईश्वर का नाम नामी संबंध कल्पित नहीं है जैसे शालिग्राम शिला में विष्णु का, किन्तु नित्य है ॥ योगी याज्ञवल्क्य जी ने कहा है—

[तै०] यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रत्यन्ति अभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञा सस्व । तद् ब्रह्मेति ॥तै० ३–१॥

जिससे यह भूत मात्र उत्पन्न होते है जिस से उत्पन्न होकर जीते है जिसमें लय होते है वह ईश्वर है ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥ तै० २–१ ॥

सत्य ज्ञान, अनंत, ब्रह्म है यह स्वरूप लक्षण है ॥

अदृष्ट विग्रहो देवो भाव ग्राह्यो मनोमय । तस्यों कार स्मृतो नामस्तेनाहूतः प्रसीदति ।अदृष्ट इंद्रियों का अविषय, भाव ग्राह्य, मनोमय जो देव है उसका नाम ओंकार है उस से स्मरण किया हुवा वह प्रसन्न होता है । इस प्रणव का जप यदि अर्थानुसंधान सहित– **दीर्घ काल निरन्तर और सत्कार** पूर्वक जप और किया जावे तो चित्त के सब विक्षेप दूर हो जाते है यदि अर्थ अनुसंधान एक काल में न बन सके तो जप के पहले और पीछे अर्थ का अनुसंधान करे । व्यास जी ने कहा है कि जप के पश्चात योग और योग के पश्चात जप करे । स्वाध्याय और योग द्वारा परमात्मा का प्रकाश होता है । यदि १२००० जप नित्य किया जावे तो एक वर्ष में आत्म साक्षात्कार होता है ॥

———

(योग का विशेष वर्णन "**भक्ति ज्ञान योग संग्रह**" पृष्ठ १९ से)

———

मुण्डकोपनिषद (शेष भाग)

ज्ञानातिरिक्त यज्ञकर्मणां फलमाह :—

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा, अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ॥
एतत् श्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा, जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥

निश्चय करके ये पूर्वोक्त यज्ञरूप नौकायें जो तरने के साधन कथन किये हैं अदृढ़ हैं जिन में सोलह ऋत्विज, यजमान और उन की पत्नी कथन किये है जो अविवेकी पुरुष इन को श्रेष्ठ मान कर प्रसन्न होते हैं वह विश्चय करके जरा और मृत्यु को

प्राप्त होते हैं ॥ (१–२–७)

सकाम कर्मणां फलमाह :—

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं, नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढ़ाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं चाविशन्ति ॥

धन तथा सांसारिक मोहरूप अज्ञान से युक्त पुरुष इष्टयागादि और आपूर्त्त वापी कूपतडागादि कर्मों को श्रेष्ठ मानते हुए इसके अतिरिक्त अन्य कोई कल्याण का मार्ग नहीं यह जानते हैं वह स्वर्ग के ऊपर अपने किये हुए कर्मों को अनुभव करके इस लोक को और इस से भी अधिक नर्क लोक को प्राप्त होते हैं ॥१–२–१०॥

तपःश्रद्धे येह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः ॥ सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥११॥

जो पुरुष शान्तचित्तवाले विद्वान् भिक्षा से अपनी वृत्ति करते हुए वन में अथवा एकान्त देश में रह कर तप और श्रद्धा का सेवन करते है वह निष्पाप होकर (सूर्य द्वारेण) ज्ञान द्वारा वहां जाते हैं जहाँ निश्चय करके वह मृत्यु से रहित अव्ययात्मा पुरुष है ॥

दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्रोणो ह्यमना शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥२-१-२॥

(अक्षर ब्रह्म) निश्चय से दीप्ति वाला अमूर्त है सर्वव्यापक है वह बाहर और प्रत्येक पदार्थ के मध्य में है, जिस लिये निश्चय करके उत्पत्ति से रहित है, इसलिये प्राणों से रहित है, मन से रहित है अतः प्रकाश स्वरूप है, पर अक्षर प्रकृति से भी परे है ॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।

तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३–१–३॥

जब उपासक स्वयं प्रकाशक विश्व के कर्ता सर्व शक्ति-सम्पन्न सर्वोपरि ब्रह्म को देखता है तब वह ब्रह्मवेता पुरुष पुण्य और पाप को दूर करके 'निरंजन' परब्रह्म को प्राप्त होता है॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान्भवते नातिवादी ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावनेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥३–१–४॥

निश्चय करके यह प्राणरूप है जो सब भूतों से सुशोभित अर्थात् प्रकट है उसको जानता हुआ विद्वान पुरुष मिथ्या बोलने वाला नहीं होता, ऐसा पुरुष आत्मा में क्रीड़ा करने वाला, आत्मा में प्रीति वाला, आत्म विषयक अनुष्ठान वाला होता है और ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ कहा जाता है॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्॥ अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥३–१–५॥

इस शरीर के मध्य में प्रकाश स्वरूप शुद्ध यह आत्मा निश्चय करके सत्य से, यथार्थ ज्ञान से, ब्रह्मचर्य्य रूप तप से सर्वदा प्राप्त होता है उसको निश्चय करके जिन के अविद्यादि दोष क्षीण हो गये हैं ऐसे साधन सम्पन्न यति पुरुष उसको देखते हैं॥

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश॥ प्राणैश्चितं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा॥६॥

ध्यान करने वाला आत्मा अणु है इस बात को जिज्ञासु अपने अनुभव से स्वय जानता है जिस आत्मा में पाँच प्रकार

का प्राण स्थिर है जिस विशुद्ध ब्रह्म में यह विराजमान होता है उसी में सम्पूर्ण प्रजाओं का इन्द्रियों के साथ चित्त ओत प्रोत है ।।

नायगात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ।।

यह आत्मा केवल वेदाध्ययन से नहीं मिलता, न बुद्धि से, न बहुत शास्त्रों के श्रवण करने से प्राप्त होता है किन्तु जिस मुमुक्षु पुरुष को ही यह आत्मा योग्य समझता है उसी को मिलता है और उसी को यह आत्मा अपने आनन्द स्वरूप को दर्शाता है ।।३–३–३।।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्य-लिङ्गात् ।। एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।।३–२–४।। तपसा चीयते ब्रह्म ।।१–१–८।।

यह आत्मा आत्मिक बल रहित पुरुष की नहीं प्राप्त होता और विषयासक्त रूप प्रमाद से अथवा त्याग रहित तप से भी नहीं प्राप्त होता; आत्मिक बल, प्रमाद रहित चित्त तथा त्याग सहित तप, इत्यादि उपायों से जो ।वद्वान् पुरुष यत्न करता है उसको यह आत्मा ब्रह्म धाम ब्रह्म स्वरूप में प्रवेश कराता है ।। (निज) प्रयत्न रूप तप से ब्रह्म जाना जाता है ।।१–१–८।।

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः ।। ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवा-विशन्ति ।।३–२–५।।

इसको ऋषि लोग प्राप्त होकर ज्ञान तृप्त हुए वशी कृत मनवाले रागादि दोषों से विरक्त शान्त चित्त वाले हो जाते हैं वे धीर समाहित चित्त होकर सर्वगत ब्रह्म को सब ओर से प्राप्त हुए सब ही में निवास करते हैं ।।

सद्गुरु का उपदेश

ओ३म् तत्सत् परब्रह्मणें नमः ।

समुद्र जब स्थिर रहता है तब उसे ब्रह्म कहते हैं और उसी समुद्र में जब लहर उठती है तब उसी को हम शक्ति या माया कहते हैं वही देश काल निमित्त स्वरूप है। सविशेष सगुण, निर्विशेष निर्गुण उसके दो रूप है। पहिले रूप में वह ईश्वर जीव और जगत् है और दूसरे रूप में वह अज्ञात और अज्ञेय है। सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता एवं अनन्तदया उसी जगज्जननी जगदम्बा प्रेमरूपिणी भगवती के गुण हैं। प्रत्येक व्यक्ति के पीछे अनन्त शक्ति विद्यमान है। एक कणविन्दु कृष्ण, बुद्ध, क्राइष्ट आदि और जगत् का विस्तार एक विन्दु को प्रकाशित करता है। एक आत्मा ब्रह्म भिन्न २ सर्व उपाधियों में प्रकाशित होता है।

बड़प्पन की डींग, दलबन्दी ईर्ष्यादि सदा के लिये छोड़ दो पृथ्वी की भाँति सहिष्णु हो जाओ। लड़कपन की चंचलता और युवापन की गम्भीरता दोनों मिलाकर सब के साथ प्रेम से रहो। आत्मा के स्वरूप का व्यक्त और कभी अव्यक्त भाव होता है। आत्मा मानों बादलों से ढके हुए सूर्य की न्याई है। हृदय को समुद्र के समान महान् बना डालो, क्षुद्र भावों को पार कर जाओ, अमंगल के आने पर भी आनन्द में उन्मत्त हो जाओ, संसार को एक चित्र की भाँति देखो। जगत् में कोई तुमको विचलित न कर सकेगा। अहन्ता को दूर कर दृढ़ता से खड़े हो जाओ। काम, काँचन, मान, यश को छोड़ कर ईश्वर को दृढ़ता से पकड़ो।

विधि निषेध के घेरे में पड़े रहने से आत्मा का प्रसार नहीं होता। जो जितनी ही आत्मानुभूति का प्रकाश कर सकता है उनके उतने ही विधि निषेध कम हो जाते हैं। दूसरों की सेवा शुभ कर्म है इसी के प्रभाव से चित्त शुद्ध होता है। इसी के प्रभाव से सब के भीतर बैठे हुए अन्तर्यामी भगवान् प्रकाशित होते हैं। आदेश के अनुसार संगठन करने का उद्योग करना, धर्म का यही लक्ष्य है, यही उद्देश्य है।

आदर्श, धार्मिक क्षमा, धृति, शौच, शान्ति, उपासना और ध्यान में परायण आदर्श का अवलम्बन विस्तार ही जीवन और संकीर्णता ही मृत्यु है। जहाँ प्रेम वहीं विस्तार, जहां स्वार्थता वहीं संकोच। अतएव प्रेम ही जीवन का एक आधार है अवश्य अहैतुक प्रेम करना चाहिये। वही एक मात्र जीवन गति का नियमन करने वाला है।

जिस कर्म से जीवों के मन में घोरे २ ब्रह्मभाव के उदय होने में सहायता पहुँचे वही कर्म उत्तम है यदि किसी को अधिक सुभीता देना हो तो बलवान की अपेक्षा दुर्बल को अधिक सुभिता दो।

सदा दाता बनो, अपना सर्वस्व दे डालो पर बदले में कुछ न चाहो। दूसरों से प्रेम करो, सहायता करो, सेवा करो, तुम से जो कुछ बने दूसरों के लिए करो पर सावधान पलटे में कुछ न चाहो। व्यक्तिगत, देशगत, कालगत, कर्माकर्म का विचार कर साधन करो। सार यही है।

"परोपकराय सतांहि जीवनम्"

आलस्यं मृत्युरित्याहुर्यत्नंजीवनमित्युत।
पिपीलिकाः कणशः कणशोऽन्नं समाहृत्य २ विवरं प्रपूरयन्ति॥
पुत्तिका वल्मीकसञ्चयात् क्षणमपि न विरमन्ति। सूर्यादयो-

ग्रहा महतावेगेन भ्रमन्तः क्षणमति विश्रान्ति न कांक्षन्ति।
क्षणमपि स्तभिते समीरणे कथमिव व्याकुली भवन्त्तिजीवाः॥

हे सच्चिदानन्द अनन्त ज्ञान स्वरूप, नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव सर्वशक्तिमान सर्व हृदयान्तर्गत सर्वव्यापक प्रभो यदि मैं तुमको यहां मनुष्य शरीर में रहते हुए भी अपनी आत्मा में साक्षात् नहीं कर पाता तो और कहाँ पा सकूँगा ? अय मेरे प्यारे परमात्मा ! मेरे हृदय और नेत्रों में प्रकट हो कर साक्षात् दर्शन दिखाओगे तो इस जीव का कल्याण होगा। ऊँ परमात्मा यह न वह वरंच सारे पदार्थों में है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसका जीवन चरित्र है, जो सब के हृदय में विराजमान होकर वह स्वयं दिख रहा है। सारे पदार्थ परमात्मा के शब्द हैं और बोलते है कि आओ २ मेरी ओर आओ। जो ईश्वर ध्वनि को नहीं सुनता वह बहरा है। जो मनुष्य उत्पन्न हुए पदार्थों के सौन्दर्य को नहीं देखता वह अन्धा है, सौन्दर्य विवेक धर्म एक ही है। तर्क से हम परमात्मा का चिन्तन करते हैं परन्तु सौंदर्य साक्षात् दर्शन कराता है। वह मनुष्य जो इन सकल पदार्थों को निरीक्षण करके भी धन्यवाद गायन नहीं करता वह गूँगा है। संसार की सुन्दर वस्तुयें एक विशेष सौंदर्य की सत्ता की साक्षी हैं प्रत्येक मधुर वस्तु अत्युत्तम मधु को दर्शाती है। जो अन्य पदार्थों के सौंदर्य और उत्तमता का स्रोत है उसी को परमात्मा कहते हैं। जो वस्तु ईश्वर के समीप है वह उत्तम है और जो दूर है वह निकृष्ट कहलाती है। प्रत्येक पवित्रतायें उस पवित्रता के स्रोत को दर्शाती है। जो अच्छा है वह अपने से अत्युत्तम श्रेष्ठता के अस्तित्व का प्रमाण है। उच्च स्वर से सकल पदार्थ पुकार रहे हैं कि परमात्मा सब में विद्यमान है। जब हम किसी वस्तु से प्यार करते हैं तो उसके आभ्यान्तर

वास करने वाले परमात्मा के कारण से करते हैं। प्यासा मनुष्य जल की अभिलाषा इसलिये करता है कि जल में परमात्मा निवास करते हैं। परमात्मा भक्तों के हृदय में प्रकट होते हैं। महान् से महान् सुख अच्छे कामों के चिंतन से होता है परमात्मा उन से प्यार करते हैं जो बुरे कामों से घृणा कर श्रेष्ठ कार्यानुरत रहते हैं।

वेदांत सिद्धान्त

ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्र विस्तारितं।
सर्वं चैतद्विद्यया त्रिगुणया शेषं मया कल्पितम्॥
इत्थं यस्य दृढ़ा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले।
चाण्डालोऽस्तु सतु द्विजोस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम॥१॥

**"एषोह देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वोह जातः सउ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्य माणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति
सर्वतो मुखः।"** (श्वेता० अ० २—मं० १६)

जो कुछ यह नाना रूप प्रतीत हो रहा है यह वस्तुतः एक है। वास्तव में एक ही परमार्थ सत्ता असली हस्ती है जिसको ब्रह्म व परमात्मा कहते है। वह शुद्ध चैतन्य व शुद्ध ज्ञान है; अर्थात् वह जानने वाला नहीं किन्तु व स्वयं ज्ञान है। वह निर्गुण है, वह आप ही है जो कुछ ह उसमें और कुछ नहीं, इसी लिये वह निर्गुण व निर्विशेष है। पर यदि वह सत् हस्ति एक है और कुछ नहीं, तब यह सारा प्रपंच कहाँ से आ गया? जिसको हम अपने चारों ओर देखते हैं, और जिसमें हम अपनी स्वयं एक अलग सत्ता रखते हैं। तो उत्तर यह है कि ब्रह्म के साथ अनादि से एक शक्ति है जिसको माया वा अविद्या कहते हैं। यह सारा प्रपंच उसी से दिखलाया जाता है। यह शक्ति न

सत् कहलाती है क्योंकि सत् केवल ब्रह्म है न असत् क्योंकि किसी न किसी भाँति इस प्रपंच को प्रकट कर देती है। वस्तुतः यह इस भ्रान्ति का अनिर्वचनीय कारण है जिससे हम अपने चारों ओर जड़ चैतन्य की विविध सृष्टि देख रहे हैं। ब्रह्म इस शक्ति के द्वारा इस प्रकार जड़ चैतन्य की अनेक सृष्टि को दिखला देता है, जैसे कोई मायावी इन्द्रजालिक अपनी माया शक्ति से अनेक प्रकार की जड़ चेतन वस्तु प्रकट कर दिखला देता है, जो वस्तुतः भ्रान्ति मात्र होते है। शक्ति रूप से जहाँ तक माया का सम्बंध ब्रह्म के साथ होता है वहां तक हम ब्रह्म को जगत का **उपादान** कारण कह सकते है अर्थात् स्वरूप से **निमित्त** और माया स्वरूप से **उपादान**। पर माया ब्रह्म की ही अनिर्वचनीय शक्ति है उससे भिन्न पदार्थ नहीं है। माया शवल ब्रह्म ही जगत का अभिन्न **निमित्तोपादन** कारण है। माया के सम्बंध से प्रायः ब्रह्म को ईश्वर कहते है। माया ईश्वर के आधीन होंकर क्रमशः इन भिन्न २ रूपों में परिणत हुई है जिनका समुदाय यह जगत है और जो अपने २ प्रति नियत नाम और रूप से निखेरे जाते हैं भूत भौतिक शरीर और इन्द्रियें यह सब उसी का परिणाम हैं। यह सारे शरीर जो एक दूसरे से भिन्न २ हैं इन सब में एक ही अभिन्न ब्रह्म है जो मायाकृत ज्ञान और कर्म के भेद से प्रति व्यक्ति भिन्न २ प्रतीत होता है। वही जीव है, जीव का परामर्थ रूप ब्रह्म है और वह एक अद्वितीय ब्रह्म है तथा प्रति शरीर ज्ञान और कर्म की भिन्न २ शक्तियों से एक जीव दूसरे से भिन्न किया जाता है। यह शक्तियां माया का कार्य हैं इसीलिये मिथ्या हैं यह जगत इनहीं भिन्न २ जीवों से भरा हुआ है परन्तु न यह जीव और न उसकी वस्तुयें परमार्थ सत् हैं क्योंकि यह दोनों माया से सम्बंध रखते

हैं माया से दिखलाये जाते हैं सो इसीलिए मिथ्या हैं। इसी प्रकार यह सारा भेद मिथ्या है वस्तुतः नहीं और प्रतीत होता है। इसी मिथ्या दृष्टि ने अपना परमार्थ स्वरूप भुलाया हुआ है। अब यह भूला हुआ आत्मा माया से परे व माया के भी असली स्वरूप को जानता है। इसका अपना परमार्थ स्वरूप इस माया के परदे से ढका हुआ है यह अपने आपको ब्रह्म समझने की जगह उन उपाधियों शरीर इंद्रियों को अपना आपा समझ रहा है। जो माया का कार्य है। इस प्रकार यह शरीर इंद्रियों मन को ही अपना असली स्वरूप जानकर इनकी सारी अवस्थाओं को अपनी अवस्था मानता हुआ कहता है कि मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हूँ, मैं अंधा हूँ, मैं वहरा हूँ, मैं शोक में हूँ, मैं चिंता में हूँ मेरा जन्म अमुक सम्वत् में हुआ, अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मैं रोगी हूँ मैं मर जाऊंगा इत्यादि। सो यह आत्मा जो परमार्थतः शुद्ध ज्ञान स्वरूप है न कि जानने वाला और अनन्त है। इस अध्यास के कारण यह एक सीमा हद में आ जाता है, अल्पज्ञ, और अल्प शक्ति हो जाता है और कर्ता और भोक्ता बन जाता है। अपने कर्मों द्वारा पुण्य और पाप का सञ्चय करता है, और ईश्वर की मर्यादा में उनके शुभ अशुभ फल भोगता है। जब तक यह रचना स्थिर रहती है यह भी बार बार जन्म ग्रहण करता है कर्म करता है और फल भोगता है। कल्प के अंत में ईश्वर इस सारे प्रपंच का संहार कर लेते है, अर्थात् यह सारा माया का कार्य अव्यक्त माया के रूप में वापिस आ जाता है। तब यह सारे जीव करने भोगने से रहित हो जाते हैं। मानो उतने काल के लिये गहरी नींद सो जाते हैं, पर उनके कर्मों की वासना अब भी नष्ट नहीं होती है। अतएव फिर नए शरीरों को धारण करते हैं जब कि ईश्वर फिर नए सिरे से सृष्टि को रचते हैं और इसी तरह वह आगे नये कल्पों में शरीरों को धारण

करते चले जायेंगे जैसे कि वह अनादि काल से पहिले कल्पों में धारण करते चले आये हैं। इसी का नाम संसार है, यह संसार तब तक बना रहता है जब तक अज्ञान है। जब ज्ञान से अज्ञान का नाश हो जाता है तब यह संसार निवृत हो जाता है। पर यह उस एक के लिये निवृत हुआ भी दूसरे के लिये बना रहता है जो अभी अज्ञान की अवस्था में है। यह मार्ग जिससे ज्ञान का उदय होता है वेद में बतलाया है। वेद में दो मार्ग बतलाये है। एक कर्म का, और दूसरा ज्ञान का। कर्म चाहे कैसा ही ऊंचे से ऊंचा क्यों न हो वह मनुष्य को संसार से पार नहीं ले जा सकवा उस का बड़े से बड़ा फल भी संसार के अंतर्गत ही होता है। दूसरा मार्ग ज्ञानकाण्ड का है इसके दो भेद हैं, एक वह मार्ग जिसमें ब्रह्म का ज्ञान वहां तक दिया है जहां तक उसका सम्बंध जगत से है। इन मार्गो में ब्रह्म के भिन्न २ गुण वर्णन किये हैं अर्थात् इनमें सगुण ब्रह्म, ईश्वर, हिरण्यगर्भ का उपदेश है और उपासना के लिये है इसी को उपासना काण्ड कहते हैं। दूसरा वह मार्ग है जिसमें ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप सारे गुणों से रहित निर्गुण वर्णन किया है वा जिसमें जीवात्मा को ब्रह्म रूप वतलाया है। इनमें से पहले ज्ञान सगुण ब्रह्म की उपसना से जीवात्मा मुक्ति नहीं पाता है; किंतु वह शरीर को छोड़ कर केवल ब्रह्म लोक में जाता है जहाँ वह एक अलग जीव के तौर पर बना रहता है। यद्यपि उस की शक्ति और ज्ञान बहुत बढ़ जाते हैं अंततः वह निर्गुण ज्ञान को लाभ करता है और तब मुक्त हो जाता है। दूसरे वह ज्ञानी जो ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को जानते हैं जो सारे गुणों से परे है और महा वाक्यों "तत्त्व-मस्यादि" द्वारा जान लेते हैं कि आत्मा के परमार्थ स्वरूप और परमात्मा में कोई भेद नही है। वह उसी क्षण परम मुक्ति लाभ करते हैं अर्थात् माया के प्रभाव से परे हो जाते हैं और

अपने असली स्वरूप को पा लेते हैं। जो केवल शुद्ध ब्रह्म है यह अद्वैत सिद्धान्त है जिसके विचार से जीव कृत कृत्य हो जाता है और उसके ज्ञान में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता है। यही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है इसी के लिये परमात्मा ने मनुष्य शरीर दिया है।

बोलो प्रेम से सच्चिदानन्द सनातन ब्रह्म की जय।

ब्रह्म का वर्णन

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसम्भवामी त्यभिसंभवामीति।'

छा० उ० अ० ८ खण्ड १३

ब्रह्म का वर्णन दो प्रकार से किया जाता है, यथा—

द्वे वाव ब्रह्मणोरूपे मूर्तं चैवामूर्तं च॥ (वृ० २–२–१)

एक उसके केवल स्वरूप का दूसरा उसके प्रकाश का, इस जगत के अन्दर होता हुआ जगत से अलग जो उसका अपना स्वरूप है उसका वर्णन स्वरूप वर्णन है। इस रूप में उसे पर-ब्रह्म, शुद्ध ब्रह्म, श्याम ब्रह्म व निर्गुण कहते हैं। वह स्थूल, सूक्ष्म, सारे विश्व में परिपूर्ण है, और उससे परे भी है। केवल रूप, निर्पेक्ष निखेरे हुए रूप में इस जगत से परे है इस का वर्णन प्रायः नेति २ शब्दों से होता है, यथा :—

स एव नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न ही गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यते सितो न व्यथते न रिष्यत्यभयं वै जनक प्राप्तोऽसीति॥ वृह०॥

और इस जगत में भी परिपूर्ण हो रहा है वह इस जगत के अन्दर चुपचाप नहीं पड़ा हुआ है किन्तु इस सारे जगत के

अन्दर समाया हुआ इस सारे जगत का अन्तर्यामी नियन्ता है। इसलिये इस जगत का एक-एक अणु उसकी महिमा को प्रकाशित कर रहा है। जिस तरह एक जीते जागते शरीर से जीवात्मा की महिमा भासती है उसी प्रकार इस जीते जागते जगत से सब जगह परमात्मा की महिमा भास रही है। सो इस तरह उसके रचे हुवे पदार्थों से उसकी महिमा का प्रकाश उस का प्रकाश कहलाता है इस रूप में उसे अपर ब्रह्म, अवर ब्रह्म, सापेक्ष ब्रह्म, शबल ब्रह्म व सगुण ब्रह्म कहते हैं। इस रूप में वह जगत के अन्दर समाया हुआ है जगत के साथ मिला हुआ प्रतीत होता है जैसे अग्नि में लाल किया हुआ लोहा ठंडे लोहे से विलक्षण होता है, विलक्षण ही प्रतीत होता है, विलक्षण ही कार्य करता है, क्योंकि उसमें एक अग्नि है जो कि ठंडे लोहे में नहीं है अथवा एक सजीव शरीर निर्जीव शरीर से विलक्षण होता है, विलक्षण प्रतीत होता है, विलक्षण ही कार्य करता है क्योंकि उसमें एक आत्मा जीवात्मा है जो कि निर्जीव शरीर में नहीं है, सो जैसे अग्नि से युक्त होकर लोहा और जीवात्मा से युक्त होकर शरीर एक विलक्षण रूप में आ जाता है सो स्पष्ट अग्नि और जीवात्मा के योग को प्रकाशित कर देता है। ठीक इसी प्रकार यह जड़ जगत एक विलक्षण रूप में हुवा अपने साथ परमात्मा के योग को प्रकाशित कर रहा है और जैसे अग्नि का लोहे के साथ मिल कर प्रकाशित होना अग्नि का शबल स्वरूप रूप है इसी प्रकार ब्रह्म का इस जगत के साथ मिलकर प्रकाशित होना ब्रह्म का शबल रूप है। यह अग्नि वायु सूर्यादि अलग २ भी अपने २ स्वरूप से उसकी महिमा को दिखला रहे है और सारे के सारे मिल कर भी। इसीलिये शबल रूप उसका वर्णन दो प्रकार से है। व्यष्टि रूप से, समष्टि रूप से। अग्नि में उसका प्रकाश है और सूर्य में भी,

हमारी दृष्टि में प्रेम चाहिये प्रियतम हमारा सर्वत्र विद्यमान है। जहां चाहो देख लो, चाहे केवल अग्नि में देखो, अथवा सूर्य में, और चाहे किसी और ही दिव्य पदार्थ में। इस रूप में भिन्न २ महिमा को लेकर नाम भी भिन्न भिन्न हो जाते हैं। जैसे कि जीवात्मा की जो महिमा नेत्र से प्रकाशित होती है उस महिमा को लेकर जीवात्मा को द्रष्टा कहते हैं, और जो श्रोत से प्रकाशित होती है उसको लेकर श्रोता, इसी प्रकार परमात्मा की जो महिमा उदय होते हुये सूर्य से प्रकाशित होती है उसको लेकर उसे सविता, और जो विजली से प्रकाशित होती है उसको लेकर उसको इन्द्र कहते हैं, जो वस्तुतः एक ही परम देव अलग अलग दिव्य शक्तियों से अलग २ प्रकाशित होता है। जैसे यजुर्वेद के ३२वी अध्याय के आरम्भ में यह मन्त्र कहा है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तच्चन्द्रमा।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

और भी कहा है **"यो देवानां नामधा एक एव"** जो परम देव सब देवताओं के नाम धारण करने वाला एक ही है। समष्टि रूप में उसका वर्णन तीन प्रकार है विराट्, ब्रह्मा और ईश्वर। इस स्थूल विश्व में एक साथ उसकी महिमा का वर्णन विराट् का वर्णन है। यथा :—

"अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्व भूतान्तरात्मा॥" (मुण्डक)॥

द्यौ उसका शिर है, सूर्य और चन्द्र नेत्र है, दिशायें श्रोत्र है, वेद वाणी है, वायु प्राण है और पृथ्वी चरण है, इत्यादि विराट् को ही विष्णु कहते है। हमारे इस स्थूल शरीर का जीवन कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन बुद्धि, और प्राण है। यही कर्म ज्ञान और जीवन की शक्तियाँ हैं। इन्हीं शक्तियों के द्वारा यह स्थूल

शरीर जाग्रत रहता है जैसे यह एक व्यवस्था है इसी तरह यह सारा ही स्थूल जगत इन्हीं शक्तियों से जीवित जाग्रत रहता है यह इस सारे स्थूल जगत के अन्दर सूक्ष्म रूप से व्याप्त होकर इसका जीवन है। यह सूक्ष्म शक्तियाँ भी उसी की महिमा को प्रकाशित करती है जिसकी महिमा को स्थूल जगत प्रकाशित करता है सो इस सारे सूक्ष्म जगत में उसकी महिमा का वर्णन ब्रह्म का वर्णन है जैसा ब्राह्मण में कहा है "**मनो वै ब्रह्मा**" इस रूप में उसे हिरण्य गर्भ और परमेष्ठी भी कहते हैं पर यह सूक्ष्म जगत भी एक कार्य है, इसका कारण इससे भी सूक्ष्म, इससे परे एक और हैं जिसमें यह सारा ओत प्रोत हो रहा है उसी को प्रकृति वा माया कहते हैं। इस प्रकृति के नियन्ता भी वही परमात्मा है यथा उपनिषदि—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयव भूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

जो पूर्वोक्त स्थूल और सूक्ष्म जगत् का नियन्ता है। यह प्रकृति भी उसी की महिमा को प्रकाशित करती है। इस सारी प्रकृति में उस की महिमा का वर्णन ईश्वर का वर्णन हैं। यह सब उसके वर्णन का प्रकार मात्र है, पर जिसका यह वर्णन है वह उस सारी अवस्थाओं में एक है। वही परब्रह्म है, वही ईश्वर है वही ब्रह्मा है. वही विराट् है, और वही इन्द्रादि देवता है, वही जीव, मन, इन्द्रिय, मैं, तू वही सब कुछ है। यथा :—

"**एकमेवाद्वितीयं नेह नानाऽस्ति किंचन॥**"

वेद कह रहा है वह एक ही अपनी अप्रमेय और अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से इस प्रकार वर्णन किया गया है कि जैसे अनेक हैं। जिसकी महिमा एक एक अणु से अलग २ प्रकाशित हो रही है। जिसकी महिमा सारे स्थूल, सूक्ष्म जगत और मूल प्रकृति से भी झलक रही है। उसकी महिमा का वर्णन इस

रीति से हो सकता है कि उसके वर्णन में एक एक अणु से उसकी महिमा चमके, और स्थूल सूक्ष्म तथा मूल प्रकृति से भी चमके क्योंकि वह जो सारी रचना में एक बसा हुआ है उस एक को सारी रचना मिलकर ही पूरा वर्णन कर सकती है। और वह उन सारी रचनाओं में रहकर भी इससे अलग है और इससे परे भी है इसलिये वह अपने अलग स्वरूप में भी वर्णन किया गया है। यही उसका पूरा वर्णन है उसके जानने का प्रकार भी यही है कि पहले हम स्थूल व्यष्टी में उसकी महिमा को अनुभव करते है, फिर स्थूल समष्टो में, और शुद्ध हुये चित्त के द्वारा स्थूल के अन्दर प्रवेश करके सूक्ष्म में, तत्पश्चात् उससे भी आगे बढ़ कर मूल प्रकृति में, उसकी महिमा को देखते हैं और तब उससे परे इस सारी महिमा के योनि भूत चश्मे ब्रह्म तत्व को देखते हैं चित्त शबल स्वरूप तक ही पहुँचता है इससे परे ब्रह्म तत्व है और उसके दर्शन केवल आत्म तत्व से ही होते हैं न कि चित्त सें। श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा है :—

यदात्मतत्वेन तु ब्रह्मतत्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्व तत्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः।
न तस्यकार्यं करणं च विद्यते न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च॥

जिस अवस्था में योगी दीपक के समान प्रकाश स्वरूप स्वात्मभाव से ब्रह्म तत्व का साक्षात्कार करता है उस समय उस अजन्मा निश्चल और जो अविद्या तत् कार्य समस्त तत्वों से विशुद्ध है उस देव को जानकर जीव अविद्या आदि समस्त पाशों स मुक्त हो जाता है।

———

आश्रमों का निर्माण

श्री महाराज जी ने आश्रम नहीं बनवाए। उन्हें आवश्यकता ही नहीं थी कुटिया मकान आदि की। वे तो जहाँ भी जाते जंगल में ही ठहरा करते थे। पर भक्तगण भी उनके पीछे पीछे वहीं खिचे चले जाते थे। श्री महाराज जी भी उन भक्तों की सुविधा के विचार से वहाँ कुआँ, मकान आदि बनवाने की बात कह देते थे और बात ही बात में कुआं, मकान, तालाब और छायादार वृक्ष लगकर आश्रम तैयार हो जाता था। सन् १९०६-७ से जब से श्री महाराज जी इस ओर प्रगट हुए, पालम, जींद, नरेला आदि में इस प्रकार के रमणीक स्थान बनते चले गये। इसी प्रकार सन् १९१६ में श्री महाराज जी की आज्ञा लेकर रेवाड़ी के राव बहादुर कैप्टिन राव बलवीर सिंह जी ने वीयावान जंगल में राम जोहड़ी के पास एक मकान बनवाया जहाँ धीरे धीरे परम रमणीक श्री भगवद् भक्ति आश्रम रेवाड़ी बनकर खड़ा हो गया। इसी प्रकार दादरी में भक्त नन्द किशोर जी मोर पंख वाला तथा उनके पिता जी सेठ गणेशीलाल ने नगर के बाहर अपनी भूमि पर आश्रम का निर्माण करा लिया। श्री महाराज जी घूमते घूमाते इन आश्रमों पर पहुँच जाया करते थे तथा अपने अनेक भक्तों को आनन्दित किया करते थे।

सन् १९१५-१६ की बात है। श्री महाराज जी जींद के बीड़ (जंगल) में घूम रहे थे। अचानक एक स्थान पर आप चलते चलते रुक गये और बोले यह स्थान तो आश्रम के योग्य है। यहां आश्रम बनना चाहिए। श्री महाराज जी तो इतना

कहकर आगे बढ़ गए पर साथ के भक्तों ने यह बात गांठ बांध ली। भक्त किशन लाल ने वहां पर थोड़ी सी भूमि खरीद ली और सन् १६१६ में कुछ अन्य भक्तों के साथ रेवाड़ी पहुँचकर प्रार्थना की—महाराज जी मैंने बीड़ में आश्रम के लिए भूमि खरीद ली है। आप वहां पधारे तथा आश्रम का निर्माण कराएँ। कुछ समय पश्चात् ईगरा के महात्मा भावानन्द जी (पूर्व श्री भोला राम जी, जो चिनाई का काम करते थे) श्री महाराज जी के दर्शनों को गये। श्री महाराज जी ने उन्हें आदेश दिया—किशन लाल ने भूमि खरीद ली है। तू वहां जाकर निवास कर, फिर हम भी आ जावेगें, वहां आश्रम बनना है। श्री भावानन्द जी ने आज्ञा शिरोधार्य की। वे जींद गये और अपने सेवकों की सहायता से एक कुआँ, एक गुफा, गुफा के ऊपर एक कुटी तथा एक अन्य कुटी बनाई और कई वृक्ष भी लगवाए।

रेवाड़ी आश्रम का विकास सन् १६१८ से बराबर हो रहा था। सन् १६१६ में मेरे दो बड़े भाई श्री राजा राम जी तथा श्री जयराम जी और मैं अपने स्कूल कालेज आदि की पढ़ाई छोड़ कर श्री महाराज जी की सेवा में आ गये। तभी श्री भूमानन्द जी तथा महाशय दलीप सिंह जी (अब स्वामी कृष्णानन्द जी) भी आश्रम आ गए। श्री महाराज जी इस समय आश्रम के सर्वप्रथम निर्मित मकान में ही विराजते थे।

किन्तु सन् १६१६ में ही उस भवन में एक अप्रिय घटना हो गई, जिससे श्री महाराज जी ने उसका निवास छोड़ दिया और पालम आश्रम की ओर चले गये। राव साहब तो विकल हो उठे। भक्त की दृष्टि से भगवान क्षण भर भी ओझल हो जाए तो भक्त को चैन कहाँ ? राव साहब पालम आश्रम में श्री महाराज जी के चरणों में उपस्थित हुए और दूसरा भवन बन-

वाने की अनुमति माँगी। अनुमति मिल गई और दूसरा भवन तैयार हो गया। श्री महाराज जी अब उसी में निवास करने लगे। और उनकी संरक्षता में आश्रम निर्माण होने लगा।

आश्रम निर्माण के अन्य कार्य तो चल ही रहे थे। सड़कें बनवाना, वृक्ष लगाना, वृक्षों में पानी देना, गो-सेवा, तालाब खोदना, तालाब में पानी लाने के लिए छोटी बड़ी नहरें बनाना, घास छीलना, झाड़ियाँ काटना इत्यादि कार्य बराबर चला करते थे। ये सारे कार्य सभी भक्त जन स्वयं अपने हाथों से करते थे, इसके लिए कोई नौकर मजदूर आदि नहीं रखे जाते थे। इन कार्यों में छोटे बड़े का भी कोई भेद भाव नहीं था। स्वयं राव बहादुर श्री बलवीर सिंह जी, उनकी रानियाँ, राज-कुमारियां सभी घास छीलते हुए, कभी मिट्टी ढोते हुए, कभी पानी लाकर आश्रम के वृक्ष सींचते हुए दिखाई देते थी। महाशय दलीप सिंह जी वानप्रस्थी तथा भक्त नन्द किशोर जी भी सपरिवार आश्रम में रहते हुए इन कार्यों में पूरा पूरा भाग लिया करते थे। ये तो आश्रमवासी ही थे, इनकी बात तो छोड़िये, दर्शनों के लिए आने वाले नवागन्तुकों के लिए भी तालाब से कम से कम पाँच टोकरी मिट्टी निकालने का नियम था और इस नियम का पालन सभी दर्शनार्थी, यहाँ तक कि अंग्रेज अफसर तक बड़े आनन्द के साथ किया करते थे। क्योंकि-आनन्द का सागर जो वहीं पास में विराजमान था।

सन् १९२० में राव साहब भयंकर रूप से बीमार हो गए। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। जीवन की कोई आशा न रही। ऐसी स्थिति आ जाने पर भी महाराज जी ने भक्त जी को राव साहब के महल में रामपुरा भेजा। भक्त जी ने वहाँ पहुंचकर श्री महाराज जी का संदेश राव साहब को दिया।

आपका मन करे तो आश्रम आ जाओ "राव साहब ने कराहते हुए उत्तर दिया मैं तो तड़प रहा था आश्रम के लिए, मैं अभी चलूँगा। राव साहब को उठाकर महल से नीचे लाया गया और वहां से रथ में लिटाकर आश्रम। श्री महाराज जी ने उनका पलंग वृक्षों के नीचे खुली हवा में डलवा दिया। साधारण उपचार से ही वे कुछ दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गये। महत्व उपचार का थोड़े ही था, महत्व तो श्री महाराज जी की कृपा का था। राव साहब तो जानते थे कि यह जीवन तो मुझे श्री महाराज जी ने ही दिया है, अतः उन्होंने अपना शेष समय श्री महाराज जी की सेवाओं में ही बिताने का निश्चय किया। अब वे आश्रम में ही रहने लगे। उनकी सुपुत्री राजकुमारी सुमित्रा देवी (भूतपूर्व एम०एल०ए० हरियाणा) भक्त नन्द किशोर जी की पुत्रियां कमला एवं गोदावरी देवी, मुन्शी रूपराम जी की सुपुत्री सूरज देवी आदि अनेक बालिकाएँ तथा भूमानन्द जी आदि अनेक ब्रह्मचारी, अविवाहित रहकर ही आश्रम की सेवा में समर्पित हो गए। आश्रम के विस्तार के साथ-साथ राव साहब अधिकाधिक भूमि आश्रम को दान करते गये। उन्होंने कुल मिलाकर नौ सौ बीघे भूमि आश्रम के निमित्त तथा एक गांव डालियाकी आश्रम की कन्या पाठशाला के लिए दान दिया। उनकी इस दानवीरता का तथा श्री महाराज जी की कृपा का ही परिणाम था कि प्राचीन शैली का यह दिव्य आश्रम हरियाणा की उस शुष्क रेतीली भूमि पर निर्माण हो गया।

भक्त आते और एक दो दिन सत्संग करके चले जाते। उनके मन में ललक उठा करे कि हम भी स्थायी रूप से ही इस पवित्र वातावरण में निवास करने का आनन्द क्यों न ले। श्री महाराज जी से अनुमति ली गई और राम सरोवर के कोने, बुरजियाँ तथा दूर पास के चारों ओर के स्थान, भक्तों के

मकानों तथा कुटियाओं से सुशोभित हो गए। उधर सावजनिक उपयोग के लिए तो महाराज जी की प्रेरणा से सन् १९२०-२१ से ही अतिथि शाला, कन्या पाठशाला, अछूत पाठशाला, ब्रह्मचर्य आश्रम, औषध तुल्य जल वाली एक कुई जिसे ब्रह्मचारियों ने अपने हाथों से खोदा था, आदर्श गोशाला, उसका मुख द्वार महिला मण्डल, मीठा कुआँ (वर्षा के जल से मीठा बनाया हुआ), दो शिव मन्दिर, राम कुटी, बृहद् राम सरोवर, व चारों ओर के पक्के घाट, गऊ घाट, औषधालय, विशाल सत्संग भवन बराबर बन ही रहे थे। जो भक्त गृहस्थ जीवन बिताते हुए भी आश्रम के सानिध्य में रहना चाहते थे उनके लिए आश्रम को सीमा से लगा हुआ गृहस्थाश्रम बन गया। श्री महाराज जी अब बड़े सत्संग भवन में तीसरी मंजिल पर विराजमान हुए। गड्डी भी सत्संग भवन की तीसरी मंजिल तक पहुँचती थी। यह सारा कार्य १९३२ तक पूरा हो गया था। बाद में श्री राघवानन्द जी ने (पूर्वाश्रम के श्री रामदयाल जी, जिनका देहान्त अभी कुछ मास पूर्व ही जींद आश्रम में हुआ है) गोचर भूमि में एक छोटा राघव कुंड बनाया तथा उसके चारों ओर सैकड़ों वृक्ष लगाए और पश्चिम की ओर राम कुटी के पास, वर्षा का जल रामसरोवर में लाने के लिए, एक विशाल मार्ग तथा उसके निकट एक कुई बनाई। स्थान रमणीक हो गये।

उपर्युक्त वातावरण और साक्षात् भगवत् तुल्य श्री महाराज जी का सान्निध्य परिणाम यह था कि आश्रम स्वर्ग के समान प्रतीत होता था। जहाँ किसी को भी खाने-पीने की, धन, वस्त्र आदि की तनिक भी चिन्ता कभी भी नहीं होती थी। आश्रम में महीनों तक भण्डारे ही चलते रहते थे। सभी आश्रम वासी हर समय सत्संग, कीर्तन तथा आश्रम की सेवा कार्य में मस्त रहते थे। श्री महाराज जी के दर्शन करते हुए उनकी कृपा की

छाया में आबाल वृद्ध सभी आनन्द में मग्न रहते थे। ऐसा लगता था मानों कामधेनु और कल्प वृक्ष ही आश्रम में विद्यमान हो। और इसमें सन्देह भी क्या था ?

इस प्रकार एक अनुपम आश्रम का निर्माण हो गया। जो कोई उसे देखता उसका हृदय ही उल्लास से भर उठता। किंतु श्री महाराज की दृष्टि में यह अभी पूर्ण नहीं था। वे चाहते थे कि आश्रम के चारों ओर तपोवन हो जिसमें ऋषियों की वाटिकाओं से घिरी हुई कुटियाएं हो जहाँ मृग स्वच्छन्द विचरते दीखते रहे, तपोवन के तीन ओर घोर बन हो जिसमें जंगली पशु भी आनन्द करे, उसके परे वृक्षों से भरी हुई भूमि हो जहाँ पर यात्री विश्राम करे—तभी यह प्राचीन आश्रमों का नमूना होगा। परन्तु भूमि की कमी के कारण यह संभव नहीं हुआ।

श्री महाराज जी की इच्छा के अनुरूप भले ही आश्रम न बन पाया हो, पर जैसा जो कुछ भी बन गया था वही दर्शकों के मनों को मोह लेता था। देश के अनेक प्रमुख व्यक्ति तथा अंग्रेज अफसर आश्रम देखने आते रहते थे। वे आश्रम की छटा को देखकर चकित हो जाते थे और कहने लगते कि संसार में यह एक अद्वितीय और निराला स्थान है। स्वामी श्रद्धानन्द जी, श्री विट्ठल भाई पटेल, पं० मदन मोहन जी मालवीय, सेठ जमना लाल जी बजाज, श्री जे० के० बिडला, सर शादी लाल जी, तथा डालमियाँ परिवार के अनेक प्रतिष्ठित महानुभाव श्री महाराज जी के दर्शन करके यही कहने लगे कि हमें तो जीवन का धन मिल गया। तीव्र इच्छा होने पर भी महात्मा गाँधी जी आश्रम नहीं आ सके उन्होंने मीराबेन को महाशय दिलीप सिंह जी के साथ आश्रम भेजा। मीरा बेन तो आश्रम देखकर और महाराज जी की लीला का अनुभव कर मुग्ध हो गई और तीन मास तक आश्रम में ही रही।

राव साहब श्री बलवीर सिंह जी पंजाब की लेजिस्लेटिव काउन्सिल के सदस्य थे। ग्रीष्म काल में जब काउन्सिल का अधिवेशन शिमला में होता था तो वे आग्रह करके श्री महाराज जी को भी शिमला ले जाते थे तथा धौलपुर हाउस में ठहराया करते थे। पंजाब राज्य के उच्च तथा वरिष्ठ अधिकारी—बख्शी टेक चन्द, सर फीरोज़ खाँ नून, सर छोटू राम, सर शादी लाल आदि—उनके दर्शन पाकर अपने को धन्य मानते थे और उनके सत्संग, कीर्तन तथा ब्रह्मज्ञानोपदेश में तमन्य हो जाते थे। श्री महाराज जी ने देखा कि पढ़ी-लिखी जनता में से श्रद्धाविश्वास उठता जा रहा है और वह बड़ी तेजी के साथ नास्तिकता की ओर दौड़ी चली जा रही है। उनके कल्याणार्थ आप ने सन् १९३१ में शिमला में सत्संग सभा स्थापित की, जहाँ पर सभी हिन्दू—आर्य समाजी, सनातन धर्मी, सिख, जैन आदि—इकट्ठे होकर सत्संग का लाभ उठाने लगे।

एक बार की बात। सत्संग चल रहा था और प्रमुख लोग सत्संग में बैठे हुए थे। उन्होंने श्री महाराज जी से प्रश्न किया। महाराज जी, मनुष्यों का कल्याण किस प्रकार हो सकता है? श्री महाराज जी क्षण भर को ध्यानस्थ से हुए और बोले, वेद जननी, कल्याणदायिनी, शान्ति प्रदा गायत्री के प्रचार एवं जप से ही मानव जाति का कल्याण होगा। इसके पश्चात् श्री महाराज जी ने गायत्री का खूब प्रचार किया और गायत्री की पुस्तिकाओं को लाखों की संख्या में छपवा छपवा कर बिना मूल्य वितरित करवाया। यह क्रम आज तक भी चल रहा है।

श्री महाराज जी की प्रेरणा से शिमला के भक्तों ने चक्षु-दान यज्ञ के मेले (कैम्प) भी किये। शिमला के चक्षुदान यज्ञ को देखकर वाइसराज़ी लैडी विलिंगडन भी बहुत प्रभावित हुई और उन्होंने मिशन के साथ अपना नाम भी जुड़वा दिया। इस

प्रकार के अनेक चक्षुदान यज्ञ रेवाड़ी, देहली, प्रयाग, वृन्दावन राजस्थान एवं हरियाणा के अनेक नगरों में हो चुके थे तथा होते रहे हैं जिनके माध्यम से हाजारों लाखों अन्धों को आँखें मिली। आज भी "सन्त परमानन्द ब्लाइण्ड रिलीफ मिशन" के नाम से दिल्ली के तीन हस्पतालों द्वारा देश के अनेक भागों में चक्षु दान यज्ञों के आयोजन होते रहते है।

सन् १९३५ में जींद के भक्तों ने श्री महाराज जी से जींद चलने की प्रार्थना की। उसी वर्ष सर्दियां में आप जींद पधारे। अनेक सत्संगी भक्त भी आपके साथ थे। मकानों के अभाव से जींद राज्य के मुख्य मंत्री श्री ढींगरा ने वहाँ राज्य के खेमे लगवा दिये और आश्रम का निर्माण होने लगा। ग्रामों के २००-२५० भक्त भजन गाते, ढोल बजाते हुए आते और रोज तालाव की मिट्टी निकालते। दूसरे भक्त लोग सड़कें बनाना, वृक्षारोपिण, जलसिंचन आदि कार्य करने लगे। गोशाला बनाने का भी आदेश दिया गया। श्री महाराज जी ने महात्मा राम जी को 'तुझे तो यहीं रहना है' इत्यादि वाक्यों से इस आश्रम की देखभाल के लिए नियुक्त किया। फिर राव साहव प्रार्थना करके थोड़े समय के लिए, श्री महाराज जी को रेवाड़ी ले गये। वहाँ से १९३६ की गर्मियों में शिमले जाकर आपने शरीर छोड़ दिया, सबके शरीर ही मानों निष्प्राण हो गए। आश्रम सूना सा हो गया अव आश्रम का चलाना भी एक चिन्ताजनक समस्या हो गई। कुछ समय तक तो राव साहव जी आश्रम का काम चलाते रहे। पर समस्या तो समस्या ही है। अतः राव साहव १९४० में आश्रम का ट्रस्ट बनाकर चिन्ताओं से कुछ मुक्त से हो गये।

श्री महाराज जी के शरीर छोड़ देने पर जींद आश्रम के निर्माण का काम तो अधुरा रह ही गया था। श्री महाराज जी

की आज्ञा से भक्त फूलसिंह जी ने वहां कन्या गुरुकुल बड़ी शांति से चलाया। परन्तु तभी से गुरु पूर्णिमा व निर्वाण पंचमी पर भक्त किशनलाल तथा लाला सीता राम जज ने, जींद के अन्य भक्तों के साथ रेवाड़ी आकर प्रार्थना की कि जींद में भी रेवाड़ी आश्रम के अनुरूप ही आश्रम बनना चाहिए। फलस्वरूप सन् १९४० में रेवाड़ी से निर्माण कार्य विशारद ब्रह्मचारी शंकर देव (अब महात्मा शंकरानन्द जी) ने जींद आकर म० राम जी के साथ आश्रम निर्माण की व्यवस्था की। भक्त फूलसिंह जी द्वारा वहाँ से कन्या गुरुकुल हटा लेने पर, रेवाड़ी से श्री सेवानन्द ८-१० महात्मा व ब्रह्मचारी, शरीर श्रम द्वारा आश्रम निर्माण कार्य में अग्रसर हो गये। प्रथम तो भिक्षा वृति चलती रही। धीरे-धीरे भक्तों की सहायता से सैंकड़ों बीघे जमीन खरीद कर खेती-बाड़ी, गोशाला, आम, नींम्बू के बाग आदि की व्यवस्था बनाई गई तथा नहर व ट्यूबवैल द्वारा जल सिंचन से आश्रम स्वावलम्बी हो गया। सड़कें और घने वृक्ष, पुष्प, मकान, मन्दिर, व गोशाला के साथ इस आश्रम का इतना सुन्दर दर्शनीय रूप ८-१० महात्माओं व ब्रह्मचारियों के अनथक परिश्रम द्वाराहु आ और श्री महाराज जी की अन्तिम आज्ञा नुसार यह कार्य पूर्ण हुआ। अब वहां गोशाला में १५-१६ गायें हैं। नित्य प्रति दोनों समय गरम दूध व भोजन बिना मूल्य दिया जाता है। भंडारे भी खूब होते हैं। हर इतवार को गायत्री यज्ञ—जिसमें समीप के ग्रामों से तथा जींद नगर से भक्तजन शामिल होते हैं। दिन में कथा और शाम को प्रार्थना तो चलती ही रहती है। म० कृष्णानन्द जी के प्रयास से आश्रम की दैनिक नियम व्यवस्था में भी काफी सुधार हुआ है। आश्रम से अनेक पुस्तकें छपवाकर वितरण की जाती हैं। परम भक्त किशोरी लाल के सुपुत्रों ने म० रामानन्द जी के लिये राम कुटी

व नारायणी देवी ने अतिथि शाला बनवाई। अन्य सहायता भी भक्त लोग समय समय पर करते रहते हैं।

अब हम क्षण भर के लिए फिर से रेवाड़ी आश्रम की ओर चलें। सन् १९४१ में राव साहब का स्वर्गवास हो गया और आश्रम असहाय सा हो गया। आश्रम की सारी व्यवस्था डाँवाडोल होने लगी। आश्रम का खर्चा चलाना कठिन पड़ने लगा। पूरा भार रानी जी के ऊपर आ पड़ा। धीरे-धीरे बचे खुचे महात्मा भी जीद चले गये। और आश्रम का काम शिथिल हो गया। बड़ी रानी जी ने सन् १९४५ में अपने एक योग्य भतीजे कैप्टिन राव वीरेन्द्र सिंह को गोद लेकर आश्रम भार उन्हें सौंप दिया और वीरेन्द्र सिंह जी (भूतपूर्व मुख्य-मन्त्री हरियाणा) ने आश्रम में स्कूल, वोर्डिग हाऊस की बिल्डिंग्स, स्टेडियम, वाटर वर्कस आदि बनवा बनवाकर बड़ी उन्नति की। उन्हीं के प्रयत्नों से आश्रम की बड़ी अच्छी भूमि व कई मकानों को पुनर्वास को बदले में डालियाकी ग्राम (राव बहादुर का आश्रम को दान किया हुआ) की भूमि से अदल-बदल करके बचा लेना संभव हो सका। उन्हीं के प्रयत्नों से लड़के लड़कियों के काफी ट्रेनिंग केन्द्र खुल गये, हजारों का उपकार हुआ। आश्रम की व्यवस्था में भी उन्होंने काफी सुधार कर दिखाया। हमें विश्वास है कि यदि राव वीरेन्द्र सिंह जी को श्री महाराज जी का दर्शन-सत्संग प्राप्त हुआ होता तो आश्रम आध्यात्मिक दिशा में भी उनकी देखरेख में उन्नति की ओर अग्रसर होता।

राव वीरेन्द्र सिंह जी (एम० पी०) आश्रम को अपने पूर्वजों का एक महान् कार्य जानकर माहिमान्वित होते हैं। उनमें श्री महाराज जी के प्रति श्रद्धा है। पुराने भक्त महात्मा दयानन्द जी तथा महात्मा राम जी को बड़े आदर से

बुलाकर आश्रम का काम पूर्ण स्वतन्त्रता से चलाने का उन्होंने काफी प्रयत्न किया। उनके प्रयास से बड़े-बड़े नेता एवं पदाधिकारी (पंजाब के तत्कालीन मुख्य मंत्री स्व० श्री कैरों, केन्द्रीय मंत्री श्री जगजीवनराम, श्री वी० के० कृष्णामेनन आदि) आश्रम आये। यहाँ का शान्त वातावरण और अनुपम प्राकृतिक छटा देख कर यें सभी सज्जन बोले कि चारों ओर अशान्ति का साम्राज्य है और भौतिकवाद की भावनाएँ मनुष्यों के हृदयों को कलुषित कर रही हैं। ऐसे समय में श्री महाराज जी ने अवतरित होकर राजस्थान के द्वार पर थोड़े ही समय में एकान्त स्थान में शान्ति, भक्ति एवं भारतीय प्राचीन संस्कृति की स्थापना रूप यह दिव्य आश्रम बना दिया। उनकी इस ईश्वरीय शक्ति की अनुभूति तथा उनकी तेजोमयी मूर्ति के दर्शनमात्र से हम तो अपने को कृतकृत्य और धन्य मानते हैं और उनके दिव्य शक्ति युक्त महान् पुरुष होने की अनुभूति करते हैं।

अनेक परिवर्तनों के पश्चात् भी आश्रम का दिव्य सौन्दर्य आज श्री महाराज जी के भौतिक शरीर छोड़ देने के चालीस वर्ष पश्चात् भी अक्षुण्ण है, यह देखकर हृदय उस महान् विभूति के प्रति आनन्दमयी श्रद्धा से भर जाता है और रह रह कर यही भावना मन को व्यथित करने लगती है कि काश, अब भी वह दिव्य मूर्ति अपने दिव्य दर्शन-सत्संग का लाभ सबको लुटाती हुई हमारे चर्म-चक्षुकों के समक्षविद्यमान होती॥

विनीत

२सी/१२ रोहतक रोड
नई दिल्ली-५

हरिराम शर्मा (महिमानन्द)
१ जून, १९७५

ब्रह्मलीन श्री १०८ स्वामी परमानन्द जी महाराज के वैदिक सदुपदेश

भाग दूसरा

अमर कथा

(खण्ड १)

यह पुस्तक श्री अशोक कुमार गुप्ता ४४१२ क्लौथ मार्केट, गणेश बाजार, दिल्ली ने छपवाई। श्री गुरु चर्णों में समर्पित।

(कतिपय धन्यवाद)

दूसरा संस्करण ५५०
जौलाई १९७५

मूल्य :
१०८ गायत्री जप
और स्वध्याय

अमर कथा

खण्ड १

उपदेष्टा--परम हंस पूज्य श्री १०८ स्वामि परमानन्द जी महाराज

श्री महाराज जी के शिष्य पं० रघुनाथ स्वामि (नरेला निवासी) द्वारा प्रणीत (सन् १९०८)

प्रथम संस्करण—पालम निवासी श्री पं० रामचन्द्र शर्मा द्वारा अपने पिता पं० माधो सिंह जी के स्मरणार्थ निज व्यय से छपाकर प्रकाशित किया (सन् १९३९)

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

१. श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा, रेवाड़ी
२. श्री भगवद्भक्ति आश्रम, जींद
३. श्री गोविन्द राम अग्रवाल, ६०४ घंटेश्वर, कटडा नील, दिल्ली
४. श्री हरिराम शर्मा, २ सी/१२, न्यू रोहतक रोड, नई दिल्ली-५
५. श्री ऊँकार नाथ अग्रवाल, बड़ा बाजार, शिकोहाबाद (यू०पी०)

भूमिका

ॐ सत्यमेव जयते नानृतम् ।

लीजिये, यह आपका सर्वस्व धन यह वेद अमृत-रूपा अमर कथा । **सद्गुरु १०८ श्री परमानन्द** की पूर्ण कृपा से ३१ वर्ष पूर्व प्राप्त । यमुना नदी से एक योजन पर नरेला के प्राचीन बन में श्री महाराज जी बोले, लो चारों वेदों के सार रूप ये १०८ अष्टोत्तरशत मंत्र ही शिव माला है । यह वेद वाणी शिव सती संवाद है । महर्षि पतंजल ने कहा है—"अग्री वस्तं प्रत्यमुञ्चत्" बेसिर का इस माला को पहन सक्ता है—

इह चेदवेदीदथसत्यमस्ति नचेदिहा वेदीन्महतिविनष्टि । केन०

यदि इसी मनुष्य जन्म में परमात्मा जाना गया तो अमृत है और यदि यहाँ न जाना गया तो बड़ी हानि है ।

परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा मायेति कथ्यते ।
पुरुषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी ।। शि० पु० ।

ईश्वर शिव है, शिवा माया, पुरुष परमेश, प्रकृति परमेश्वरी है ।

शिवः—शेते सर्व शरीरेषु इति शिवः ।

जो सब शरीरों में सो रहा है वही शिव है ।

या माः—या नास्ति किन्तु प्रतिभासते सा माया ।

जो न हो किन्तु प्रतीत होवे वो माया है । यदि शक्तिमान् की सच्ची उपासना की जाय तो शक्ति अलग नहीं रह सकती । पुरुष से भिन्न प्रकृति नहीं, पुरुष की प्रकृति परमात्मा का स्वभाव, ब्रह्म की माया, शिव की शक्ति, ईश्वरभूत जीव, और जीवभूत ईश्वर की इच्छा ।

ॐ साम्ब सदाशिवः

८४ लक्ष जीवन में मानव शरीर ही सब प्राप्तियों का सर्वोपरि सिद्धि साधन है यदि इस में भी हरि हर प्राप्ति न भई तो सब ही प्राप्ति निष्फल हैं अर्थात् सब प्राप्तियों पर धूल है। क्योंकि "भस्मान्त शरीरम्" यह शरीर भस्म होगा।

देहो देवालयः प्रोक्तः सजीवः केवलः शिवः।
त्यजेदज्ञान निर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत्॥

हे देवी! यह देह मन्दिर अर्थात् देवालय है, जीव ही केवल शिव है अज्ञान रूपी जो अन्धेरा है उसको दूर करना ही निर्माल्य है, जब अन्धेरा गया और प्रकाश हुआ तो २१६२० अहर्निश श्वासों में मुझ शिव स्वरूप को सोऽहं भाव से भज, पूजन कर और भव बन्धन हर।

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रामन्ते तामसा जनाः।
आत्म तीर्थं न जानन्ति कथं मोक्ष वरानने॥

यहां तीर्थ वहां तीर्थ ऐसे तमोगुणी भ्रमते हैं। हे देवी! आत्मा रूपी सच्चे तीर्थ को नहीं जानते उनकी कैसे मोक्ष हो।

हे सति जी! वेद भगवान् मेरा शरीर है, तुही वेद वाणी मंत्र रूप है। **मन्त्राणां मातृका देवी**। यही उपनिषद् महा वाक्यादि मंत्र मणिका या अमर फल नाम १०८ वेदमन्त्र रूप से हैं। 'हे सति! एकाग्रता से सुनो' यह सच्चिदानन्द स्मरणी माला रूप, १०८ मुण्ड रूप मणिके वा वेद मन्त्र हैं।

सती ध्यानावस्थित हो कथा में मग्न हो गई तदनन्तर गाढ निद्रा छा गई, समीप ही एक शुक अण्ड था वह भेद को प्राप्त हुआ और हूँहाँ करने लगा और मुक्त हो गया। ओम् शम्

सन १९३९

निवेदकः

पं० रघुनाथ स्वामी नरेला, सूबा देहली।

॥ ऊँ नमः शिवाय ॥

अमर कथा

(१) प्रथम मणिका

ओ३म् योभूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(यो) जो परमेश्वर (भूतं) अतीत काल जो व्यतीत हो गया है (च) और अनेक चकारों से जो वर्तमान काल है (भव्यं) और तीसरा भविष्यत् अर्थात् होने वाला काल है उन सब को और उनके व्यवहारों को यथावत् जानता है (यः) जो परमेश्वर (सर्वं) सब को (अधितिष्ठति) अध्यारोप से अध्यस्त कल्पना कर सर्व के अधिष्ठान रूप से अर्थात् अधिष्ठाता रूप से स्वामी है (च) और (यस्य) जिसका (स्व) सुख ही (केवलं) केवल स्वरूप है (तस्मै) उस अपार सुख स्वरूप अपने आपे (ज्येष्ठाय) सब से बड़े महादेव (ब्रह्मणे) पर ब्रह्मानन्द स्वरूप के लिये (नमः) हमारा नमस्कार हो।

इस मन्त्र में भूत भविष्यत् वर्तमान आदि अवयवों से युक्त काल पुरुष का पूर्व वर्णन करते हुए परमेश्वर की महती महिमा से महान् शुद्ध ब्रह्म की भक्ति और प्रेम से आत्मसमर्पण नमस्कारों द्वारा पूजा विधान की है, मनुष्य को प्रथम काल का ज्ञान अत्यन्त आवश्यकीय है जैसा कि अथर्व वेद में लिखा है—

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्
काले न सर्वा नन्दन्ति आगतेन प्रजा इमा।

काल ही में मनुष्य को ज्ञान होता है अथवा मन क्रिया करता है काल ही मैं पुरुष का प्राण अर्थात् जीवन पवित्र होता है और काल ही में पुरुष की कीर्ति अर्थात् नाम का यश अटल होता है जिस प्रकार राम का। आई हुई प्रजा काल ही का आदर कर किन्तु समय को व्यर्थ कार्यों में न गवां कर

समय की सार जानकर अनन्य भक्ति द्वारा परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होती है जैसा कि वेद में परमेश्वर उपदेश देते हैं—

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरि रेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥

अथर्व० १९ | ६ | ५५ | १

काल रूपी घोड़ा जिस की सप्तरश्मि हैं सहस्रों नेत्र हैं जो कभी बूढ़ा नहीं होता जिसकी शक्ति बहुत बड़ी है वह सब को उठाये लिये जाता है ज्ञानी विद्वान् उस पर सवार होते हैं अर्थात् काल को जीत लेते हैं उस के रथ के पहिये सारे भुवन हैं और भी वेद भगवान् कहता है—

सप्त चक्रान् वहति कालएष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः।
सइमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालःसईयते प्रथमो नुदेवः॥

अथर्व०

(सप्त चक्रान) यह सात चक्रों को अर्थात् सप्त दिवसों को (वहति) उठाये हुए है (सप्त) सात (अस्य) इसकी (नाभि) नाभि हैं (अमृतं) अमृत अमर (नु) निश्चय करके (अक्ष) व्यापक नेत्र हैं जो सर्व के पाप पुण्य देखता है (स) वह (इमा) इन (विश्वा) सारे (भुवनानि) भुवनों को (अञ्जत) व्यक्त करता हुआ (प्रथमः) पहला (देवः) देव (स) वह (कालः) काल (ईयते) चला जा रहा है पकड़ो, समय को व्यर्थ न जाने दो, करले सो काम भजले सो राम, फिर पीछे पछतायगा प्राण जायंगे छूट, श्वांस २ में जात है तिरलोकी का मूल, इन बचनों के अनुसार काल बहुत अमूल्य है क्योंकि:—

काले भूमीमसृजत् काले तपति सूर्यः
कालेह विश्वा भूतानि काले चक्षु विपश्यति। अथर्व०

काल ने रचना रची है काल में सूर्य तपता है काल में सब

भूत हैं, काल में नेत्र देखता है।

सर्वान् लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः
सईयते परमोनुदेवः। अथर्व०

समस्त लोकों को ब्रह्म के द्वारा जीत कर वह परम देव काल चला जा रहा है पकड़ो, समय को व्यर्थ न जाने दो, नहीं तो नर्कों में महान् दुःख उठाना पड़ेगा, और पछताना ही शेष रह जायगा। अमूल्य मनुष्य रूपी जन्म को प्राप्त हो काल की सार न जान अपने पूर्वार्जित शुभ कर्मों को भी गवांकर संसार रूपी बाजार में बेचकर मनुष्य रूपी जन्म के समय को ईश्वरार्पण परोपकार में न लगा कर दुःख रूपी कारागार सदैव के लिये बन्धन को प्राप्त हो जाते हैं, इस लिये बाद विवाद को छोड़ ईश्वर भक्ति करो फल खाओ, यह न पूछो कि वृक्ष कब लगा और किसका है नहीं तो समय व्यर्थ चला जायगा और भूखे के भूखे रह जाओगे और दूसरे जो कहते हैं कि संसार कहाँ से और किस लिये ईश्वर को क्या प्रयोजन था यह धर्म सत्य है या असत्य परमेश्वर है या नहीं इत्यादि भ्रम जाल में फंसकर गुरु के बचन पर दृढ़ विश्वास न कर समय को वृथा तर्क दलीलों में गवां कर घोर नर्क में पतन होते हैं, इस लिये परम पिता अनन्त दयालु ने वेद में उपदेश दिया है कि काल को वृथा मत गवांओ परमेश्वर त्रिकालातीत है कणाद महर्षि ने वैशेषिक दर्शन में काल का यह लक्षण किया है—

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमितिकाल लिंगानि॥

जिस में पर अपर युगपत एक बार चिरंविलम्ब क्षिप्रं शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको काल कहते है।

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति

जो नित्य पदार्थों में न हो और अनित्यों में न हो इस लिये कारण में ही काल संज्ञा है। वैशेषिक अ० २

यह मोक्ष के समय ही लय हो जाता है, परमेश्वर काल का अधिष्ठान है जैसे किरणों का सूर्य और लहरों का समुद्र है जिसका अनन्त अपार सुख ही स्वरूप है उस सब से बड़े परमेश्वर को हमारा बार बार नमस्कार हो ॥

(२)

यस्य भूमि प्रमान्तरिक्ष मुतोदरं दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

भाष्य—(यस्य) जिसकी (भूमि) पृथिवी (प्रमा) यथार्थ ज्ञान का साधन पाद की तरह (अन्तरिक्षं) आकाश जिसके (उदरं) उदर तुल्य है (दिवं) दिव तथा प्रकाश करने वाले पदार्थों को अर्थात् जिसने द्युलोक को मस्तक तुल्य (यः) जो (मूर्द्धानं) मस्तक तुल्य (चक्रे) किया है (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) ज्येष्ठ (ब्रह्मणे) ब्रह्म के लिये (नमः) नमस्कार हो ॥

व्याख्या—जिस परमेश्वर के होने और ज्ञान में भूमि जो पृथिव्यादि पदार्थ है सो प्रमा अर्थात् यथार्थ ज्ञान की सिद्धि होने का दृष्टान्त हैं जिस ने सृष्टि में पृथिवी को पाद स्थानी रचा है। अन्तरिक्ष अर्थात् सूर्य पृथिवी के मध्य में आकाश है उसको जिस ने उदरस्थानी किया है प्रकाश करने वाले द्युलोक को सब के ऊपर मस्तक स्थानी किया है जो पृथिवी से ले के सूर्य लोक पर्यन्त सब जगत् को रचके उस में व्यापक होके जगत के सब अवयवों में पूर्ण होकर सब को धारण कर रहा है। उस परब्रह्म को हमारा अत्यन्त नमस्कार हो।

(३)

यस्य सूर्यश्चक्षुः चन्द्रमाश्च पुनर्णवः अग्निं यश्चक्रास्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अर्थ—(यस्य) जिसने (सूर्यः) सूर्य (च) और चन्द्रमा को (चक्षुः) नेत्र स्थानी किया है (च) और (पुनः) पुनः कल्प कल्प

के आदि में (णवः) नवीन नूतन बनाता है (अग्नि) अग्नि को (यः) जो वा जिसने (आस्यं) मुख स्थानि (चक्रे) किया है (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) बड़े (ब्रह्मणे) ब्रह्म के लिये (नमः) हमारा नमस्कार हो ॥

व्याख्या—जिस परमेश्वर ने नेत्र स्थानी सूर्य और चन्द्रमाओं को किया है जो कल्प के आदि में सूर्य चन्द्रमा आदि सर्व लोकों को बारंबार नये २ रचता है और जिसने मुख स्थानी अग्नि को उत्पन्न किया है, अर्थात् सूर्य के ऊर्ध्व भाग में जो प्रकाश है कि जिस प्रकार सूर्य चमकता है वह परमेश्वर का मस्तक है। सूर्य चन्द्रमा जिसके नेत्र हैं, आकाश जिसका उदर, और मुख जिसका अग्नि है, उस अनन्त ब्रह्म के लिये हमारा नमस्कार हो ॥

(४)

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षु रङ्गिरसो भवन् दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानि स्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

भाष्य—(यस्य) जिसने वा जिसका (वातः) ब्रह्मान्ड के वायु को (प्राणापानौ) प्राण और अपान की न्याईं किया है (चक्षुरंगिरसः) जो प्रकाश करने वाली किरणें हैं वे चक्षु की नाईं (अभवन्) की हैं अर्थात् उन से रूप ग्रहण होता है (दिशो) दिशाओं को (यः) जिस ने (प्रज्ञानि) प्रज्ञापिनि व्यवहारों को सिद्ध करने वाली बनाई हैं(तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) अनन्त ब्रह्म के लिये (ब्रह्मणे) ब्रह्म को (नमः) नमस्कार हो ॥

व्याख्या—उपमन्यु के पुत्र प्राचीन शाल, पुलुष के पुत्र सत्य यज्ञ, भाल्लवी के पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष के पुत्र जन, आश्वतराश्वि के पुत्र बुडिल, यह पाँचों श्रोत्रिय वेदवेत्ता एकत्रित होकर विचार करने लगे कि हमारा आत्मा क्या है और ब्रह्म क्या है

उन्हों ने निश्चय किया यह जो आरुणि उद्दालक है यह आत्मा को जानता होगा इन्हीं को गुरु धारण करें, यह विचार उद्दालक के समीप आये वह प्रसिद्ध उद्दालक उनको आया देख विचारने लगा कि यह बड़े गृहस्त ब्रह्मवेत्ता मुझ से पूछेंगे हम उनको उत्तर देने में समर्थ नहीं इस लिये उद्दालक बोले हे पूजनीय देवो ! कईकेय के पुत्र अश्वपति निश्चय करके सम्प्रति इस समय में वैश्वानर ब्रह्म को वे भले प्रकार जानते हैं चलो उन्हीं को गुरु धारण करें, इस प्रकार विचार कर सब उनके समीप स्थित हुए राजा ने उनकी पूजा कराई, वह प्रसिद्ध राजा प्रातःकाल उठते ही उन के समीप जा कर बोले कि—

नमेस्तेनो जनपदे नकदर्य्यो न मद्यपो ।
नानाहिताग्नि नां विद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥

(मे) मेरे (जनपदे) देश में (नस्तेनः) न चोर है (न कदर्यः) न कृपण हैं (न मद्यपः) न मद्य पीने वाला (न अनाहिताग्नि) न आग्निहोत्रादि यज्ञ न करने वाला (न अविद्वान्) न मूर्ख अपठित (न स्वैरी) न कोई व्यभिचारी है। और जब व्यभिचारी ही नहीं तो (कुतः स्वैरिणी) व्यभिचारिणी स्त्रियाँ कैसे हो सकती हैं। सो आप कुछ धन ऐश्वर्य मांगें मैं दूंगा आप मेरे यहां निवास करें तब ऋषि बोले हम जिस अर्थ के लिये आये है वह अर्थ आप हम लोगों को वैश्नावर आत्मा का उपदेश करें यही हमारी प्रार्थना है तब राजा ने पूछा हे "औपमन्वय' तू किस आत्मा की उपासना करता है।

उसने कहा द्युलोक की उपासना करता हूं राजा बोले निश्चय करके यह उत्तम तेजोराशि वैश्नावर आत्मा है जिस को तूं उपासता है इस लिये तूं सुत प्रसुत आसुत यह तीनों प्रकार के सोमरस तेरे कुल में दीखते हैं। आप अन्न खाते और प्रिय

देखते हो उसके कुल में ब्रह्म तेज होता है जो इस प्रकार से इस आत्मा वैश्नावर को उपासता है, परन्तु राजा बोला कि तू मेरे पास न आता तो तेरा शिर गिर जाता, अर्थात् बिना गुरु के उपासना खिन्न भिन्न और अधूरी होती है। इसी प्रकार सत्य यज्ञ से पूछा उसने कहा भगवन् मैं आदित्यात्मा की उपासना करता हूं, तो महाराज बोले कि यह वैश्वानर आत्मा की चक्षु है। इस लिये तेरे कुल में रूप की विशेषता है मेरे पास न आते तो तुम्हारी चक्षु गिर जाती, इन्द्रद्युम्न से पूछा कि हे वैयाघ्रपद्य! आप किस लक्षण विशिष्ट ब्रह्म की उपासना करते हो वह बोला भगवन् वायु की, इसी प्रकार जन सारकराक्ष से कहा उसने कहा भगवन् मैं आकाश की उपासना करता हूं फिर बुडिल से पूछा उसने कहा कि हे राजन् ! मैं जल की ही उपासना करता हूं गौतम गोत्रोत्पन्न आरुणी के पुत्र उद्दालक से बोले क्या आप किस लक्षण विशिष्ट आत्मा की उपासना करते हैं उसने कहा भगवन् पृथ्वी की। राजा ने कहा यह उसकी प्रतिष्ठा है, तुम भिन्न २ रूप से वैश्वानर आत्मा को जानते हुए अन्न खाते हुए अन्न खाते हो परन्तु जो ब्रह्म को उक्त प्रकार से प्रादेश मात्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रयत्क्ष जानने वाला व्याप्त ब्रह्म को उपासता है वह सब लोगों में सब भूतों में सब आत्माओं में अन्न खाता है आनन्द भोगता है इस आत्मा का तेजो राशि द्युलोक ही मूर्द्धा, सूर्य चक्षु, वायु प्राण, समान, आकाश धड़ समान, वस्ति ही जल, पृथिवी ही पाद वक्षस्थल यज्ञ वेदी समान, लोम ही यज्ञ कुश की समान, हृदय गार्हपत्य अग्नि की समान, दक्षिणाग्नि की समान मन, आहवनीय अग्नि मुख समान है पहले आहुति की यह विधि है :—

'प्राणाय स्वाहा'

इति यह बोल कर मुख में ग्रास अग्नि में आहुति देवे इस से

प्राण तृप्त होते है प्राण के तृप्त होने से चक्षु तृप्त होता है और चक्षुओं के तृप्त होने से आदित्य तृप्त होता है और आदित्य के तृप्त होने से द्युलोक तृप्त होता है, द्युलोक के तृप्त होने से जो कुछ द्युलोक और आदित्य के आश्रित है वह सब तृप्त होता है, इन सबकी तृप्ति के पश्चात् प्रजा पशु अन्न तेज और ब्रह्म तेज से यजमान तृप्त होता है। तदनन्तर द्वितीयाहुति का हवन करे उसको—

'व्यानाय स्वाहा'

पढ़ कर आहुति देवे इस से व्यान तृप्त होता है इसका सम्बन्ध श्रोत्रिय इन्द्रिय से है, व्यान के तृप्त होने से श्रोत्र तृप्त होता है श्रोत्र के तृप्त होने से चन्द्रमा तृप्त होता है चन्द्रमा के तृप्त होने से दिशायें तृप्त होती हैं और दिशाओं के तृप्त होने से जो कुछ दिशा और चन्द्रमा के अधिकार में है वह सब तृप्त होता है उस सब की तृप्ति के अनन्तर से यजमान प्रजा पशु ऐश्वर्य तेज और ब्रह्म तेज से तृप्त होता है।

(चदि आल्हादे) धातु से चन्द्रमा बना है उसी से चांदपुर जिस के अर्थ आनन्द दाता के है आनन्द दाता से जो परिपूर्ण है वही पुर है पुर नाम शरीर का है आनन्द देने वाला आत्मा है बाईं चूची के नीचे पुण्डरीक आम्रतुल्य नीचे लटकता है इसी में चन्द्रपुर अर्थात् चांदपुर संघटित होता है इस के अनन्तर तीसरी आहुति अर्थात् तीसरा ग्रास इस मंत्र को पढ़ कर देवे—

'अपानाय स्वाहा'

इस प्रकार पढ़ कर हवन करे। इस आहुति से अपान की तृप्ति होती है अपान के तृप्त होने से वाणी की तृप्ति होती है वाणी के होने से अग्नि तृप्त होता है अग्नि के तृप्त होने से पृथिवी तृप्त होती है पृथिवी के तृप्त होने से जो कुछ पृथिवी

और अग्नि के अधिकार में है वह सब तृप्त होता है उस सब की तृप्ति के अनन्तर प्रजा पशु ऐश्वर्य और ब्रह्म तेज से यजमान तृप्त होता है चौथी आहुती—

'समानाय स्वाहा'

पढ़ कर देवे इस से समान की तृप्ति होती है समान के तृप्त होने पर मन तृप्त होता है मन के तृप्त होने से परिजन्य तृप्त होता है परिजन्य के तृप्त होने पर विद्युत् तृप्त होता है बिजली के तृप्त होने पर जो कुछ बिजली और परिजन्य के अधिकार में है, वह सब तृप्त होता है तदनन्तर प्रजा पशु ऐश्वर्य सांसारिक बल और ब्रह्म तेज से यजमान तृप्त होता है पांचवीं आहुति—

'उदानाय स्वाहा'

पढ़ कर हवन करे इस से उदान की तृप्ति होती है उदान की तृप्ति से त्वचा की तृप्ति त्वचा की तृप्ति से वायु की तृप्ति वायु के तृप्ति होने पर आकाश की तृप्ति होती है आकाश के तृप्त होने पर जो कुछ वायु और आकाश के आश्रित है वह सब तृप्त होता है वह यजमान प्रजा पशु ऐश्वर्य सांसारिक तेज और ब्रह्म से तेज तृप्त होता है **छान्दोग्य** उपनिषदि पंचम प्रपाठके।

प्रश्न—सकारे सूतकं विद्धि वकारे रिपु वर्द्धनम्।
हकारे ब्रह्महत्याच आहुति कुत्र दीयते॥

सकार में आहुति देने से सूतक होता है, वकार में शत्रुओं की बृद्धि होती है और हकार में ब्रह्म हत्या होती है तो आहुति कहां देनी चाहिये॥ प्रयोग पारिजातके॥

सकारे च वकारे च हकारे च परित्यजेत्।
स्वाहान्ते जुहुया द्विद्वान् एतद्धो मस्य लक्षणम्॥

सकार और वकार तथा हकार को त्याग दे स्वाहा के अन्त में विद्वान् आहुति देवें यह होम का लक्षण है। इस आदेश को

उपलब्ध कर ऋषि जीवन्मुक्त हो गये ॥

(५)

ओं यत्र ज्योति रजस्रं यस्मि ल्लोके स्वर्हितम् तस्मिन् मां धेहि पवमाना मृते लोके अक्षत इन्द्राये इन्दो परिश्रव ॥

अर्थ—(हे पवमान) पवित्र स्वरूप (इन्दो) सर्वानन्ददायक (यत्र) जहाँ (अजस्रं) निरन्तर (ज्योतिः) तेज है (यस्मिन्) जिस (लोके) लोक में (स्व) सुख (हितं) स्थित है (तस्मिं) उस (अमृते) अमर (अक्षिते) नाश रहित (लोके) लोक में (मां) मुझ को (इन्द्राय) परमैश्वर्य आदि के लिये (धेहि) धारण कीजिये (परिश्रव) आनन्द वर्षाइये ॥

भावार्थ—हे अविद्यादि क्लेशों के नाश करने वाले पवित्र स्वरूप परमात्मन् सर्वानन्द दायक सर्व के अपने आप जहाँ तेरे स्वरूप में निरन्तर व्यापक तेरा तेज है जिस ज्ञान से देखने योग्य तुझ में नित्य सुख स्थित है उस जन्म मरण से रहित आपके अविनाशी अर्थात् दृष्टव्य अपने स्वरूप में आप मुझ को परमैश्वर्य अर्थात् एकता प्राप्ति के लिये कृपा से धारण कीजिये और मुझ पर माता के समान कृपा भाव से आनन्द की वर्षा कीजिये आप ही हमारे एक आधार हैं आपको छोड़ कर कहां जायें आपके चरण शरण में पड़ा हूं ओम् ॥

(६)

यत्र राजा वैवश्वतो यत्रावरोधनं दिवः यत्रामूपहुति राप स्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिश्रव ॥

अर्थ—(हे इन्दो) आनन्दप्रद देव (यत्र) जिस तुझ में (वैवश्वतः) सूर्य का प्रकाश (राजा) प्रकाशमान हो रहा है (यत्र) जिस आप में (दिवः) द्युलोक अर्थात् बुरी कामनाओं की (अवरोधनं) रुकावट है (यत्र) जिस आप में (अमू) वे कारण

रूप (पहुतिः) बड़े व्यापक आकाशस्थ (आपः) प्राणप्रद वायु हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (मां) मुझको (अमृतं) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (परिश्रव) मुझ को प्राप्त हूजिये ॥

भावार्थ—हे आनन्द प्रद परम पिता परमात्मन् जिस आप में सूर्य का प्रकाश प्रकाशमान् हो रहा है और हे स्वामिन् जिस आप में बिजली अथवा बुरी कामनाओं की रुकावट हैं हे प्रभो! जिस आप में वे कारण रूप बड़े व्यापक आकाशस्थ प्राणप्रद वायु हैं उस अपने स्वरूप में मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिये और हे परम दयालो पतित पावन परमैश्वर्य के लिये आर्द्र भाव से आप मझको प्राप्त हूजिये यह आप से विनय है ॥

(७)

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिश्रव ॥

अर्थ—(हे इन्दो) परमात्मन् (यत्र) जिस आप में (अनुकामं) इच्छा के अनुकूल (चरणं) विचरना है (यत्र) जिस (त्रिनाके) तीसरे स्वर्ग पर (त्रिदिवे) तीनों प्रकाशके ऊपर (दिवः) स्वतः प्रकाश करने वाले (लोका) यथार्थ ज्ञान युक्त (ज्योतिष्मन्तः) ज्योति स्वरूप ज्ञान स्वरूप प्रकाश वाले हैं (तत्र) उस में (मां) मुझ को (अमृतं) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (परिश्रव) प्राप्त हूजिये ॥

भावार्थ—हे परमात्मन् अनन्तानन्द स्परूप मेरे अपने आपे जिस आपमें इच्छा के अनुकूल स्वतन्त्र विचरना है जिस त्रिविध अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक, दुःख से रहित तीन सूर्य विद्युत् और सौम्य अग्नि से प्रकाशित सुख स्वरूप में कामना करने योग्य शुद्ध कामना वाले यथार्थ ज्ञान

युक्त शुद्ध विज्ञान युक्त मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध पुरुष स्थिर आनन्द भोगते हैं उस अपने स्वरूप में मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिये और परमैश्वर्य के लिए मुझको प्राप्त हूजिये मैं आपकी शरण हूं।

(८)

यत्र कामा निका माश्च यत्र बृध्नस्य विष्ठषम् स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिश्रव ॥

अर्थ—(हे इन्दो) आनन्द स्वरूप (यत्र) जिस आप में (कामा) सब कामना (निकामा) निष्कामना हो जाती है (च) और (यत्र) जिस आप में (बृध्नस्य) बड़े सूर्य का (विष्टपं) विशिष्ट सुख (च) और (यत्र) जिस आप में (सुधा) अपना ही धारण (च) और (तृप्ति) पूर्ण तृप्ति है (तत्र) उस रूप में (मां) मुझको (अमृतं) प्राप्त मुक्ति वाला (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) मोक्ष के लिये (परिश्रव) अपना स्व स्वरूप प्रकाशित कीजिये।

भावार्थ—हे निष्कामानन्द प्रद सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मन् सबों में सर्वस्व जिस आपमें सब कामना और अभिलाषा छूट जाती हैं हे महेश्वर जगद्निषेधावधिभूत अनन्त अपार तेजोमय जिस आपमें सबसे बड़े प्रकाशमान् सूर्य का विशिष्ट सुख और जिस में सुधा अपना ही धारण और जिस आपमें पूर्ण तृप्ति है उस अपने सुख स्वरूप में मुझको अद्वैतामृत वाला अर्थात् प्राप्त मुक्ति वाला कीजिये तथा सब दुःख विदारण के लिये आप मुझ पर करुणा वृत्ति कीजिये।

(९)

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते कामस्य यत्राप्ताः कामस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिश्रव।

अर्थ—(यत्र) (हे इन्दो) दयालु आनन्द युक्त पारब्रह्म (यत्र) जिस आपमें (आनन्दा) सम्पूर्ण आनन्द (च) और (मोदाः) सम्पूर्ण हर्ष (मुद) सम्पूर्ण प्रसन्नता (च) और (प्रमुद) प्रकृष्ट प्रसन्नता (आसते) स्थित हैं (यत्र) जिस आप में (कामस्य) अभिलाषी पुरुष की (कामा) सब कामना (आप्ता) प्राप्त होती हैं (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (माँ) मुझको (अमृतं) मृत्यु से रहित (कृधि) कीजिये (परिश्रव) दर्शन दीजिये अर्थात् प्रेम वर्षाइये।

भावार्थ—हे सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर परममित्र सर्व के अस्तित्व जिस आपमें सम्पूर्ण समृद्धि और सम्पूर्ण हर्ष और संपूर्ण प्रसन्नता और प्रकृष्ट प्रसन्नता स्थित हैं हे परमपति प्राणनाथ जिस आपमें, अभिलाषी पुरुष की सब कामनायें प्राप्त होती हैं उसी अपने स्वरूप में परमैश्वर्य के लिये मुझ को जन्म मृत्यु के दुःख से रहित मोक्ष प्राप्त युक्त कीजिये जिस के प्राप्त होने से पुनः संसार में आना नहीं पड़ता—

नच पुनरावर्तन्त अनावृत्ति शब्दात् न स पुनरावर्तते,
ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ॥

इत्यादि श्रुति और भगवान् कपिल और गौतम भी यही कहते हैं—

नमुक्तस्य पुनर्बद्धयोगः अनावृति श्रुते रथ त्रिविधा दुःखात्यन्त निवृति रत्यन्त पुरुषार्थः बाधना लक्षणं दुःखमिति तदत्यन्त विमोक्षो पवर्गः।

इत्यादि अनन्त अपार मुक्ति वाला मुझको निज स्वरूप में कीजिये और इसी प्रकार सब जीवों को सब ओर से प्राप्त हूजिये।

एक आप ही का सहारा है यह पाँच मंत्र ऋग्वेद मंडल

सूक्त ११३ में परमपिता ने स्व स्वरूप की प्राप्ति के हेतु निर्माण किये अर्थात् शुद्धान्तःकरणों में प्रकाशित हुए, उपासना और प्रार्थना इसी का नाम है जब रोम २ में परममित्र परमेश्वर का प्रेम प्रवाहित होने लगे अपना आपा मिट जावे सब वही विदित हो जैसा कि गान्धारी पाण्डव गीता में कहती हैं—

त्वमेव माता चपिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देवः ।।

एक महात्मा कहते हैं—

त्वमसि ममभूषणं त्वमसि ममजीवनं त्वमसि मम जलधिरत्नं ।

और भी हिन्दी भाषा में कहा है—

।। सवैया ।।

मात तुही गुरुतात तुही ममभ्रात तुही प्रभु धान्यभण्डारा ।
ईश तुही जगदीश तुही मम शीश तुही प्रभु राखनहारो ।।
राव तुही उमराव तुही मनभाव तुही मम नैन को तारो ।
सार तुही करतार तुही परिवार तुही घरबार हमारो ।।१।।

मां छोटे बच्चे को आम्रफल खेलने को देती है, बच्चा दस्तूर के म्वाफ़िक हाथ से पकड़ कर मुंह के पास ले जाता है और चूसने लगता है चूसते २ अन्तिम वह फल फूट पड़ा और बच्चे के हाथ पैर, मुंह पर, कपड़ों पर, रस ही रस फैल गया अब तो न कपड़े याद हैं न मां याद है न हाथ मुंह का ही होश है रसरूप हो रहा है इसी तरह श्रुति माता का दिया हुआ यह पका हुआ महा वाक्य रूपी अमरफल जब एकान्त में अन्तः-करण के साथ दुहराते २ आखिर फूट पड़ता है और परमानन्द समाधि आ जाती है जैसा कि भगवान् पतंजलि कहते हैं—

"ईश्वर प्रणिधानात्समाधि सिद्धिः ।।

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पणम् । तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजा करौ करौ ॥ (गरुड़ पुराण)

जिह्वा वही है जो हरि भगवान् की स्तुति करे, चित्त वही है जो उन के अर्पण हो और केवल वही हाथ सराहनीय है जो उन की पूजा में अर्थात् तन्निमित्त दानानुरक्त रहते हों, अनन्य भक्ति वाला पुरुष यदि वह विद्वान् भी न हो तदपि परमेश्वर को उत्तम पतिव्रता के सदृश अनन्य भक्ति से भजता हो जैसा कि रामायण में लिखा है—चौपाई:—

उत्तम के अस बसे मनमाहीं, स्वपनेहु आन पुरुष जग नाहीं ॥

ऐसा विश्वास हमारा परमेश्वर पर होता है, और उसे छोड़ कर हम किसी को अभिलाषा नहीं करते तब वह अपने आप हम को प्राप्त हो जाता है वरंच उसका सर्वस्व हमको मिल जाता है जिस प्रकार निम्नलिखित एक गाथा है पाठकगण ध्यानपूर्वक पढ़े कि पूर्व किसी समय में चन्द्रपुर में विजयधर नामक राजा था, उसकी पटराणी विद्याधरी चन्द्रमुखी आदि रूप यौवन और सुशीलता आदि से युक्त राजा को अत्यन्त प्रिय थीं, परन्तु एक सुमति नामक उसकी साधारण स्त्री थी जिस पर राजा का प्रेम कुछ भी विदित नहीं होता था, यद्यपि महाराज समदर्शी थे तथापि योग्यता विना वह प्रेम सूर्य की किरणों सदृश जिस प्रकार सूर्य की किरण आतशी शीशे में अग्नि प्रज्वलित करती हैं इसी प्रकार जब अपनी ओर अनन्य भक्ति और प्रेम का प्रभाव अत्यन्त दृढ़ परिज्ञात हो जाता है उस समय प्रत्येक पुरुष प्रेम के आधीन हो जाता है सुमति कुछ विचार में थी कि इतने ही में एक साधू महात्मा संन्यासी आन उपस्थित हुए सुमति ने 'भिक्षां देहि' २ शब्द को श्रवण कर यथोचित भिक्षा से महात्मा का सत्कार किया और पूछा कि

महात्मन् मेरे पति की मुझ पर अत्यन्त श्रद्धा हो ऐसा कोई उपाय कथन कीजिये "पति वियोग सम कोई दुःख नाहीं" महात्मा ने कहा कि आज से ही अपने पति के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं से राग छोड़ दो और किसी वस्तु आभूषण खानपान अनुरक्तता मत रक्खो तुम को कोई पदार्थ मिले उन को न ले कर दिन रात पति का चिन्तन करो चाहे तुम रूपवती हो न हो विद्या हो न हो इनसे कोई प्रयोजन नहीं केवल प्रीतम में सच्चा प्रेम और दृढ़ विश्वास हो, यही हमारा उपदेश है रानी ने उसी रोज़ से यह दृढ़ भक्ति द्वारा गुरु उपदेश अपने हृदय में धारण कर लिया कतिपय दिवसों के अर्थात् कुछ कालान्तर में रशिये के निवासी रूस सम्राट् से महान् जंग आरम्भ हो गया उस युद्ध में महाराज विजयधर की विजय हुई और राजा ने रशिये की राजधानी में अपनी राजधानी नियत की और अपना प्रतिनिधि स्थापित कर हर्षित हो कर रानियों को पत्र लिखा कि यहाँ नाना प्रकार के रत्न जड़ित आभूषण, मनोहर वस्त्र और प्रत्येक पदार्थ उपस्थित अर्थात् विद्यमान हैं, अपनी रुचि के अनुसार यथेच्छ वस्तु मंगाने के लिये लिखो जो वस्तु मंगावोगी वही तुम को प्रस्तुत की जावेगी, यह मेरा सच्चा बचन है हमारी विजय हो गई है जो तुम मांगोगी सो देने को तैयार हूं यह पत्र जब चन्द्रपुर में रानियों को प्राप्त हुआ तो सब ने अपनी २ रुचि के अनुसार यथेच्छ वस्तु इस प्रकार पत्रों में लिखी किसी ने हार, किसी ने रत्नजटित साटिका, किसी ने अमूल्य मुक्ताओं की माला, किसी ने कुछ अपने पत्र में लिखा किसी ने कुछ । जब छोटी रानी को कहा गया कि तुम भी कुछ मंगाओ तब सुमति ने भी प्रसन्नता पूर्वक पत्र पर एक सीधी रेखा खींच दी क्योंकि पढ़ी तो थी ही नहीं, भक्ति अपार थी, पत्र दे दिया जब सर्व रानियों के पत्र राजा के समीप पहुँचे

तब बाचक ने राजा को क्रमशः सुनाने आरम्भ किये तब लहोरी रानी का पत्र हाथ में लिया तो बाचक महाशय विस्मित हो गये और प्रेम से कंठ रुद्ध रोमाँच प्रफुल्लित हो गये राजा बोले पत्र में क्या लिखा है बाचक बोला महाराज रानी ने एक रेखा खींची है कि मुझे तो केवल एक आप ही की इच्छा है राजा बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि राजा की प्रतिज्ञा सत्य थी उसने अपने मन्त्री को स्वदेश गमन के लिये आज्ञा दी वहाँ अपना प्रतिनिधि नियत कर सेनापति सहित सर्वदल संयुक्त राजा स्वदेश को प्रस्थित हुए निदान पथ्य पथ गमन करते चन्द्र पुर में आन पहुँचे राजा तुरन्त ही जो २ वस्तु रानियों ने मंगाई थी उनको विभक्त कर अन्तःपुर को प्रस्थित कर आप सुमति के यहाँ सर्व ऐश्वर्य सहित प्राप्त हुए यह समाचार और पट-रानियों ने सुना तो अत्यन्त व्याकुल हुई परन्तु राजा का नियम सत्य था रानियों ने बहुत पश्चाताप किया और राजा से निवेदन भी बहुत किया परन्तु राजा ने एक भी स्वीकार न कर उत्तर दिया कि मैं तो अब इसी का हो चुका राज्यादि सहित तुमको जो पदार्थ प्रिय था वह तुमको मिल गया मैं तो तुमको प्यारा ही न था मैं तो इसी रानी को प्यारा था सो सर्वदा काल के लिये मैं सुमति को प्राप्त हो गया। इसी प्रकार जो भक्त परमेश्वर से मान प्रतिष्ठा अथवा धन पुत्रादि की वांछा करते हैं उनकी गति उन ही रानियों जैसी होती है और जो केवल परमेश्वर की ही इच्छा करते हैं उनको मोक्ष सहित परमेश्वर ही मिल जाते हैं।

(१०)

विश्वानि देव सवित र्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव। यजु० अ०३०मं० ३॥

(हे सवितः) सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता समग्र ऐश्वर्य युक्त (देव) शुद्ध स्वरूप सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके (न) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखो को (परासुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रं) कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह सब हमको (आसुव) प्राप्त कीजिये ॥

भावार्थ—हे सच्चिदानन्दानन्त स्वरूप, हे परम कारुणिक, हे अनन्त सामर्थ्य युक्त, हे परम कृपालो, हे अनन्त विद्यामय देव, हे सूर्यादि सर्व विद्याओं के प्रकाशक, हे सर्वानन्द प्रद, हे सकल जगत् उत्पादक सर्व शक्तिमान् आप सब जगत् को उत्पन्न करने वाले हो हमारे सब जो दुःख हैं उनको और हमारे सब दुर्गुणों को कृपा से आप दूर कर दीजिये, अर्थात् हम से उनको और हमको उनसे सदा दूर रखिये। और जो सब दुखों से रहित कल्याण है जोकि सब सुखों से युक्त भोग हैं उनको हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कीजिये, सो सुख दो प्रकार का है एक जो सत्य विद्या की प्राप्ति से अभ्युदय स्वर्ग, अर्थात् चक्रवर्त्ति राज्य, इष्ट, मित्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्यन्त सुख का होना और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है कि जिसको मोक्ष कहते हैं और जिसमें यह दोनों सुख होते हैं उसी को भद्र कहते हैं उस सुख को आप हमारे लिये सब प्रकार से प्राप्त करिये और सब विघ्न हम से दूर रहें कि जिससे हम आप को प्राप्त हो जावें।

(११)

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमज्ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥

(यत्) जो (जाग्रतः) जागते का (दूरं) दूर (उदैति) जाता है (दैवं) स्वर्गीय प्रकाश स्वरूप (तत्) वह (उ) ही (सुप्तस्य) सोये

हुये का (तथेव) उसी प्रकार (एति) आता है (दूरंगमत्र) दूर जाने वाला (ज्योतिषां) ज्योतियों का अर्थात् प्रकाशकों का (ज्योतिः) प्रकाशक है (एकं) एक (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन चित्त (शिव) शुभकल्याणकारी सुख स्वरूप (संकल्प) इच्छा वाला (अस्तु) हो ॥

भावार्थ—मेरा मन कल्याणकारी शुभ इच्छा वाला हो जो जाग्रत् अवस्था में दूर जाता है और सुषुप्ती अवस्था में उसी प्रकार लौट आता है जो दिव्य है दूर जाने को समर्थ है और प्रकाशकों अर्थात् इन्द्रियों का प्रकाशक है ॥

व्याख्या—इस वेद मन्त्र में परम पिता परमेश्वर ने सब जीवों को मानसिक शक्ति को शुद्ध करने के लिये अर्थात् शुभ संकल्पों के लिये आज्ञा दी है कि यह मेरा ब्रह्माण्डि मन सर्व-अवस्थाओं को प्रकट करने वाला है हे जीवों ! तुम्हारे लिये शुभ हो, तुम भी यही प्रार्थना करो कि हमारा चित्त कल्याण-कारी शुभ संकल्प मय हो क्यों कि मन के पवित्र वाह्याभ्यन्तर लौकिक पारलौकिक जीवन आनन्द मय अर्थात् कल्याणकारी मोक्ष का हेतु होकर सर्व दुःखों का नाशक होता है यही वेद का अनुपम उपदेश और इसका धारण करना मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश है इस मन ही को अन्तःकरण कहते हैं वेदान्त शास्त्र के अनुसार मन की चार शक्ति अर्थात् धारायें वर्णन की हैं। प्रथम वह शक्ति कि जिसके द्वारा मनुष्य इन पदार्थों को साधारण रूप से देखता है। दूसरी वह शक्ति कि पदार्थों के देखते ही जिस के द्वारा उन मेंभिन्नता प्रतीत हो। तीसरी वह शक्ति कि जिस के द्वारा पदार्थों को अपना बना लेता है। चौथी वह शक्ति कि जिसके द्वारा प्रत्येक पदार्थ के अपकृष्ट और उपकृष्ट गुणों का ज्ञान हो जैसे कि आम खट्टा और पित्त

कारक होता है, अनार शीतल और पित्त को शान्त करता है, इसी मन को मन बुद्धि चित अहंकार आदि नामों से वर्णन करते हैं जैसा कि 'चित्ति संज्ञाने' से चित्त 'मन ज्ञाने' से मन अर्थात् जिसके द्वारा लौकिक पारलौकिक वाह्याभ्यन्तर विषयों का ज्ञान हो उसे मन कहते हैं यही मन दो प्रकार का है एक वह जो प्रवृत्ति मार्ग में गमन करता है दूसरा जो निरन्तर निवृत्ति मार्ग की ओर सर्व मनुष्यों को आकर्षण करता रहता है एक को शुद्ध और दूसरे को अशुद्ध कहते हैं जैसा कि ब्रह्म बिन्दु उपनिषद् में लिखा है—

ॐ मनोहि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्ध मेव च।
अशुद्धं काम संकल्पं शुद्धं काम विवर्जितम् ॥

मन शुद्ध उत्तम अशुद्ध अधम भेद से दो प्रकार का कहा है काम युक्त मन को अशुद्ध और काम रहित को शुद्ध कहते हैं ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं वन्ध मोक्षयोः।
वद्धाय विषयाः सक्तं मुक्त्यैनिर्विषयं स्मृतम् ॥

मन ही मनुष्यों के लिये मुक्ति और वन्धन का कारण है विषयासक्त तो वन्धन का कारण होता है और विषयासक्ति रहित मुक्ति के लिये माना है—यथा ब्रह्म विदु०

यतोनिर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते।
तस्मान्निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥

मन का विषयों से रहित होना मुक्ति का कारण माना है इस लिए मुमुक्षु जनों को मन को विषयों से रहित करना चाहिये।

निरस्तविषयासंगं सन्निरुद्धं मनोहृदि।
यदा यात्युन्मनी भावं तदा तत्परमं पदम् ॥

विषयभोग को त्याग मन जब हृदय में रुक कर स्वस्थिर

हो जाता है तब यही उस के लिये परम पद है ॥

तावदेव निरोद्धव्यं यावद् हृदि गतं क्षयम् ।
एतज्ज्ञानंच मोक्षंच अतोऽन्योग्रन्थ विस्तरः ॥

मन को तब तक रोके रहना चाहिये जब तक हृदय में क्षय न होवे यही ज्ञान है और यही मोक्ष है। क्योंकि यह शुद्ध मन प्रकृति माया का प्रथम पुत्र है जिस को महतत्व कहते हैं जैसा कि **भगवान् कपिल सांख्य शास्त्र** में कहते हैं,

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः ।

अर्थात् सतोगुण शुद्ध प्रकाश ज्ञानशक्ति, रजोगुण चमकीला प्रकाश अर्थात् क्रियाशक्ति, तमोगुण ज्ञानरहित द्रव्यशक्ति जैसा-कि **वैशेषिक शास्त्र में कणाद ऋषि** कहते हैं—

क्रिया गुणवत्समवायि कारणमिति द्रव्य लक्षणम् ।

अर्थात् क्रिया गुण से युक्त अर्थात् केवल गुणयुक्त हो ऐसे नित्य सम्बन्धित समवायि कारण को द्रव्य कहते हैं यथा—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशंकालो ।
दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥

इन में से आकाश दिशा और कालक्रिया से रहित और गुणों के सहित है पृथिवी जल तेज वायु मन यह क्रिया गुणवत् हैं और भी कहा है—

मूल प्रकृति रुपिण्या संविदो जगदुद्भवेत् ।
प्रादुर्भूतं शक्ति युग्मं प्राण बुद्ध्यादि दैवतम् ॥
सात्विकस्य ज्ञान शक्ति राजसस्य क्रियात्मिका ॥
द्रव्यशक्ति तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तत्र ॥

अर्थ—जब द्रव्यशक्ति महा प्रलय में लय हो कर अन्धकार मय तमोगुण में लय हो जाती है, और वह तमोगुण रजोगुण में लय हो जाता हैं और रजोगुण सतोगुण में लय हो कर साम्या-

वस्था एकीभाव को जब तीनों गुण स्पन्द रहित होते हैं उसको मूल प्रकृति महामाया आदि नामों से कहते हैं, वह पुरुष परमात्मा अपने पति से एकी भाव हो कर तद् रूप ही हो जाती है, और एक कल्पपर्यन्त अपने प्रीतम का आनन्द भोग करती है तदनन्तर उस के शुद्ध मन पुत्र उत्पन्न होता है माता उसकी महामाया महादेव से प्रार्थना कर नव द्वारों का नगर निर्माण कराकर अपने पुत्र को राज दिवाकर स्वयं आवेगों को प्रवाहित प्रेमपूर्वक करती रहती है। इसी को **परमेश्वर की इच्छा शक्ति अर्थात् लीला या मौज कहते हैं**। इससे मन में दो लहर उत्पन्न हो जाती हैं एक प्रवृत्ति परमाणुओं में परस्पर चिपटाव मिलाप, दूसरी वह शक्ति जो पृथक् कर शुद्ध करती हैं, मूल प्रकृति परमेश्वर की मौज से जगत् को उत्पन्न करने के निमित्त दो शक्ति प्रादुर्भूत होती हैं एक महतत्व की रश्मि जो शुद्ध मन ज्ञान का प्रकाशक प्रकृति का आदिकार्य मन होता है जैसा कि **भगवान् कपिल** कहते हैं—

महादाख्यं आदि कार्य तन्मनः।

इसको महत कहते हैं वही प्रकृति का आदिकार्य मन है दूसरा प्राण आकाश को क्रियाशक्ति से क्षोभित करता हुआ जीवन प्रदाता एक देव उत्पन्न होता है यही प्राण और बुद्धि कहलाता है तात्पर्य यह है कि मन में निवृत्ति, और प्रवृत्ति, आत्मानुकूल लहर और आत्मा से वहिर्गामी प्रतिकूल धारों के उत्पन्न होने को निवृत्ति और प्रवृत्ति कहते हैं इन्हों में प्रवृत्ति से मोह अहंकार कामादि सन्तान उत्पन्न करता है, और निवृत्ति में विवेक वैराग्य शमादि सन्तति यह मन उत्पन्न करता है अथवा या यों कहो कि पश्यक से बदल कर कश्यप रूप धारण कर प्रवृत्ति रूपी दिति से असुर निवृत्ति रूपी अदिति से विवेक-

रूपी आदित्यादि देवताओं को उत्पन्न करता है प्रथम चित्त का पुत्र अहंकार उत्पन्न होता है जैसा कि महाराज विवेक कहता है—विवेकोवाच—

॥ सवैया ॥

नवद्वारन के पर ताहि रचे मन आप सुनों तिन बीच बसाये,
एकरूप होतो परमातम जो बहु भांतिन के पुर मांहि फँसाये,
सुकरे मन कार्य आप जिते परमातम के पुन माहि ठराये,
सुजपा कुसमं मणिमाहिं यथा हन स्वेतगुणं गुणलाल दिखाये,
तब चित्तको पूत हंकार बड़ो न पिता परमातम को जग गायो,
अति तोतल बैन गयो ढिग जो हँसके परमातम कंठ लगाओ,
तब भूलगयो परमातम आप भवमोह भयो यम आप अलायो,
यहै तात यहै ममभात अहै यह खेत यह सुकलत्र सुहायो ॥

॥ सवैया ॥

यह पुत्र सुमित्र अरात बड़ो पुन या वसुधा बल माहि हमारे,
गज अश्व पशु यह कोष अहे पुन एहु सुहृद् सुवन्धु पियारे,
चित्त को फुरणो जेहिभांत भयो तिमदेव परातम आपन धारे,
अज्ञानमयी बहुनींद भई सुपना बहुभांतिन भाँति निहारे ॥

तथाच जातोऽहं जनको ममैष जननी क्षेत्र कलत्रं कुलम् ।
पुत्रामित्रमरातयोः वसु वलं विद्या सुहृद् बान्धवाः ॥
चित्त स्पन्दित कल्पनोमनुभवन् विद्वानविद्यामयीं ।
निद्रामेत्य विघूर्णितो बहुविधान् स्वप्नाननु पश्यति ॥

यथा स्वप्न मयो जीवो जायते म्रियतेपिच ।
तथा जीवाः अमीसर्वे भवन्ति न भवन्तिच ॥

जिस प्रकार स्वप्न के जीव स्वप्न में ही उत्पन्न होते और स्पप्न में ही मर जाते हैं इसी प्रकार यह जाग्रत के जीव हैं... नहीं भी हैं, अर्थात् मायामात्र से हैं, और वास्तव में ज्यों के

त्यों बने तने ब्रह्म हैं। और भी :—

स्वप्न माये यथा दृष्टे गन्धर्व नगरं यथा।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ॥

अर्थ—इस संसार में नाना पन कुछ नहीं हैं और जिस प्रकार स्वप्न की माया और गन्धर्व नगर दृष्टिमात्र होता है इसी प्रकार यह सम्पूर्ण संसार है ऐसा विद्वानों ने निश्चय किया है—

न निरोधो नचोत्पत्ति बद्धोन च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वैमुक्तो इत्येषा परमार्थता ॥

अतएव वास्तव में न संसार की उत्पत्ति होती है न प्रलय होता है न कोई मुक्त न कोई बद्ध और न कोई मुक्ति के साधन हैं यही तत्व है।

यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः।
तथा भवत्य बुद्धाना मात्मापि मलिनो मलैः ॥

जिस प्रकार बालकों को आकाश नीला और मलीन प्रतीत होता है, इसी प्रकार अज्ञानियों को एक ही शुद्धात्मा जीवादि भेदों से मलीन प्रतीत होता है।

निश्चितायां यथा रज्वां विकल्पो विनिवर्तते।
रज्जु रेवेति चाद्वैतं तद्वदात्म विनिश्चयः ॥

जिस प्रकार रज्जु के निश्चय होने पर सर्प रूप संशय निवृत्त हो कर यह निश्चय हो जाता है कि रज्जु ही है इसी प्रकार आत्म तत्व के निश्चय होने से यह संसार रूप द्वैत जाल दूर हो जाता है, इन्द्रियों के मोह जाल से यह संसार रूप द्वैत प्रतीत होता है, वास्तव में नहीं और यह उस परमात्म देव की माया है जिस से जीव मोह को प्राप्त हो रहा है इत्यादि शुभाशुभ संकल्प जिस में उत्पन्त होते हैं वह मन है मन ने ही सब जगत् को रचा है जैसा कि शंकर भगवान् कहते हैं।

सुषुप्तिकाले मनसिविलीने नैवस्ति किंचित् सकलः प्रसिद्धे ।
अतोमनः कल्पित एवपुंसां संसार एतस्य न वस्तुतोऽस्ति ॥

बस इससे सिद्ध हो गया कि सर्व प्रपंच मन से ही प्रतीत होता है मन यदि शुद्ध होता है तो मनुष्य को शुद्धताई प्रतीत होने लगतो है और काम सहित अशुद्ध होता है तो मलीनता छा जाती है जब वेद मन्त्रों के द्वारा हृदय की लहर अर्थात् भावों के अनुसार मन की धारें अनुभव रूप हो कर ब्रह्मरन्ध्र सुषुम्ना नाड़ी में एकत्र होकर निरन्तर विचार अर्थात् ध्यान से ईश्वर अर्थात् आकाश की महान् शक्ति को आधीन कर मस्तिष्क में पवित्र धारें उठनी आरम्भ हो जाती हैं और मस्तिष्क के परदों से निकल कर इच्छा शक्ति द्वारा मार्ग में परिवर्तित होती हुई यथोचित स्थान में पहुंच जाती हैं यही मन का विस्तार और अकिंचन है अवस्थाओं को इसी स्वभाव से प्रकट करता है जैसा कि निम्न लिखित गाथा में वर्णन किया है ।

एक समय याज्ञवल्वल जनक के समीप आये अबके संवाद करने का भी कुछ विचार न था परन्तु जनक के यथा योग्य सत्कार से याज्ञवल्क्य प्रसन्न हो बोले हे राजन् वर मांग । तब राजा ने इच्छानुसार प्रश्न करने का वर मांगा । याज्ञवल्क्य ने कहा तथास्तु फिर राजा ने पूछा—

याज्ञवल्क्य कि ज्योति रयं पुरुषः । (बृ० ४–३)

हे याज्ञवल्क्य यह पुरुष किस ज्योति के प्रकाश से जगत् में खानपानादि व्यवहार करता हे तब मुनि ने उत्तर दिया कि—

आदित्य ज्योति सम्राडिति ।

हे सम्राट् आदित्य की ज्योति से यह व्यवहार करता है अर्थात् सूर्य के प्रकाश से बैठता चलता फिरता है । राजा बोला

जब सूर्य नहीं रहता तब ? ऋषि बोले चन्द्रमा से उक्त व्यवहार करता है। राजा बोला सूर्य तथा चन्द्रमा के अस्त होने पर पुरुष की क्या ज्योति व्यवहार की साधक है ! ऋषि ने कहा अग्नि। जब राजा ने कहा घोर अन्धकार में कुछ न दीखने पर पुरुष की ज्योति क्या है ? उत्तर दिया इस अवस्था में पुरुष-वाणी द्वारा ही पुरुष सब व्यवहार करता है क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि जब अन्धकार में पुरुष को अपना हाथ भी दृष्टि-गत नहीं होता तब जिस ओर से पशु आदि का शब्द आता है उसी ओर उसके निकट जाता है। राजा ने कहा हां ठीक है है जाग्रत की अवस्था में ऐसा ही होता है परन्तु स्वप्न में उक्त कोई पदार्थ नहीं होता तब पुरुष की ज्योति कौन है। उत्तर दिया कि—

आत्मै वास्य स्वयं ज्योतिर्भवति ।

उस काल में इसका अपना आप ही ज्योति होती है अर्थात् जनक बोला—

कतमात्मेति,

वह कौन आत्मा है जो स्वरूप भूत ज्योति से स्वप्न में सब प्रकार की चेष्ठा करता है। उत्तर—

"योऽयं विज्ञान मयः प्राणेषु हृद्यन्तर ज्योति पुरुषः"

जो यह विज्ञान मय बुद्धि का स्वामी प्राणों में चेष्टा करने वाला अन्तर हृदय में ज्योति पुरुष है वही आत्मा स्वयं प्रकाश है वही बुद्धि की समीपता से उसके समान धर्मों को धारण करता हुआ इस लोक तथा परलोक में विचरता है, अर्थात् बुद्धि के सम्बन्ध से गन्धादि विषयों का अनुभव करता और कर्मेन्द्रियों से अनेक प्रकार की चेष्टा करता है वह कभी स्वप्नावस्था को भोग कर जाग्रत में और कभी जाग्रत को भोग कर

स्वप्नावस्था में जाता है। राजा बोला कि महाराज ठीक है याज्ञवल्क्य ने कहा यही मन जीव दूसरे जन्म को धारण करता हुआ जिस २ शरीर के साथ मिलता है उसी २ के धर्मों को धारण करके अपने कर्मों का फल भोगता है और भोग प्रद कर्मों के समाप्त होने पर पुनः जन्मान्तर को प्राप्त होता है, इस के ये दो ही लोक प्रधान स्थान हैं एक यह जन्म दूसरा पुनर्जन्म और घन्ध्य नामक तीसरा स्वप्न स्थान है इसी स्थान में वर्तमान हुआ जीव दोनों स्थानों को देखता है अर्थात् जिस प्रकार जाग्रत् से स्वप्न और स्वप्न से जाग्रत् में आता हुआ उक्त दोनों अवस्थाओं से भिन्न होता है इसी प्रकार लोक तथा परलोक दोनों का भोक्ता जीव स्वतन्त्र ज्योति है उसका जैसा कर्म होता है वैसा ही जन्म धारण करता है और उसी के अनुसार सुख दुःख का भोक्ता होता है इसी प्रकार जाग्रतावस्था की सब वासनाओं को साथ लेकर उनके अनुसार ही स्वप्न में नाना विध रचना करता हुआ सुख दुःखादि का अनुभव करता है पर उस अवस्था में इसकी अपने स्वरूप से भिन्न अन्य कोई ज्योति नहीं होती, यथा—

'प्रस्वपीत्यत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति'

अब उक्त अर्थ को स्फुट् करते हैं।

'न तत्र रथाः न रथ योगाः न पन्थानो भवन्त्यथ'

इस अवस्था में यह प्रसिद्ध रथ घोड़े और उनके चलाने योग्य मार्ग नहीं होते परन्तु तो भी—

'रथान् रथ योगान् पथः सृजते'

यह जीव रथों को घोड़ों को चलने योग्य मार्ग को रच लेता है।

न तत्रानन्दाः मुदः प्रमुदो भवन्त्यथा नन्दामुदः प्रमुदः सृजते न

तत्र वेषान्ताः पुष्करण्य स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वे शान्ता पुष्करण्यः स्रवन्त्यः सृजते सहिकर्ता ॥

एवं जाग्रत् सम्बंधि आनन्द और पुत्रादि के सम्बन्ध से होने वाले मोद प्रमोद, क्षुद्र नदियें, तड़ाग, बड़ी नदियें, और झील आदि पदार्थों को जो वहां नहीं होते, उन सबको वासना से रच लेता है, तदेते श्लोकाः भवन्ति। इस विषय में यह श्लोक प्रमाण हैं—

स्वप्नेन शरीर मभि प्रहत्यासुप्तः सुप्ता नभि चाक शीति।
शुक्रमादाय पुनरेति स्थानं, हिरण्य मयः पुरुष एक हंसः॥

यह सुनहरी ज्योतिः स्वरूप हंस निर्मोही अकेला पुरुष कभी स्वप्न से जाग्रत् की ओर, जाग्रत् से स्वप्न की ओर विचर कर और उनको नाश कर और उनके कतिपय ज्ञान को लेकर वहीं आता है जहां जागने का निज स्थान होता है।

प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा।
सईयते मृतो यत्र कामं हिरण्य मयः पुरुष एक हंसः॥

जिस प्रकार पक्षी देश देशान्तरों में भ्रमण करके पुनः अपने घौसले में आकर विश्राम पाता है इसी प्रकार यह एक हंस पाँच प्रकार के प्राणों द्वारा अपने शरीर की रक्षा करता हुआ स्वप्न से पुनः जागृत् में और जाग्रत् से पुनः स्वप्न में आता जाता है परन्तु किसी में लिपायमान नहीं होता।

असंगोऽयं पुरुषः।

जब प्राज्ञ रूपी अपने स्व स्वरूप स्थित होकर ब्रह्म में लय हो जाता है जैसा कि कपिल सांख्य में कहते हैं—

समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्म रूपता।

समाधि सुषुप्ति और मोक्ष में ब्रह्म रूपता हो जाती है

तद्यथा—

प्रियया स्त्रिया सं परिष्वक्तो न वाह्यं किंचिन् वेदनान्तरं ।

जिस प्रकार अपनी प्यारी स्त्री से गले लगाया हुआ आनन्द में मग्न हो कर वाह्य तथा आन्तर्य किसी विषय को न जानता हुआ तन्मय हो जाता है—

एवायं पुरुषः प्राज्ञे नात्मना सं परिष्वक्तो नवाह्यं किंचिन् वेदनान्तरं ।।

इसी प्रकार यह जीव प्राज्ञ परमात्मा के साथ मिल कर उसके कामवर्जित अपहत पाप्मादि धर्मों वाले शान्त स्वरूप को अनुभव करता हुआ बाहर भीतर किसी विषय को नहीं जानता

अस्यैत्तदाप्त कामं अकामं रूपं शोकान्तरं ।

इसकी कामना पूरी हो कर अकाम रूपी होकर शोक रहित होता है—

अत्र पिता ऽपिता भवति ।

इस अवस्था में अथवा समाधि अवस्था में पिता पिता नहीं रहता—

माता अमाता लोका ऽलोका वेदा ऽवेदा देवा ऽदेवा अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहा ऽभ्रूणहा चाण्डालो ऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रवणो [ऽश्रवणःतापसो ऽतापसो नन्वागतं पुण्येन अनन्वागतं पापेन, तीर्णोहि तदासर्वाञ्छोकान् हृदयस्य भवति ।

माता अमाता लोक अलोक देव अदेव वेद अवेद चोर अचोर हत्यारा हत्यारा नहीं रहता । चाण्डाल अचाण्डाल हो जाता है, संकर संकर नहीं रहता, सन्यासी सन्यासी नहीं रहता, तपस्वी तपस्वी नहीं रहता, अर्थात् आनन्द में अत्यन्त नितान्त मग्न होने से उसको किसी विषय की स्मृति नहीं होती, उस समय

पाप पुण्य के फल से पार होकर हृदय-गत सब शोकों से रहित हो जाता है उस समय देखता हुआ नहीं देखता क्योंकि अपने अविनाशी स्वरूप भूत चैतन्यरूप ब्रह्म को विषय करता हुआ तन्मय हो जाता है। उस समय वह नहीं सूंघता तो यह नहीं समझना कि गन्ध ग्राहक शक्ति का लोप हो गया किन्तु गन्ध ही नहीं उस अवस्था में तो किसको सूंघे, वह रस लेता हुआ लौकिक रस नहीं लेता इससे यह तात्पर्य नहीं कि उसकी रसात्मिक शक्ति लोप हो गई किन्तु उस अवस्था में वह परमेश्वर का रस लेता है इसी प्रकार वाणी श्रवण मनन स्पर्शन ग्राहक शक्तियें समझनी चाहियें।

यत्र वा अन्य दिवस्यात् तत्रान्योऽन्य त्पश्पे दन्यो दन्य ज्जिघ्रेदन्योऽन्य दृश्येत् अन्यो अन्यं वदेत् अन्योन्यं श्रणुयात् अन्योन्यं मन्वीत अन्योन्यं स्पृशेत् अन्योन्यं विजानीयात् ॥

निश्चय करके जिस अवस्था में वृतियों के वाह्य पदार्थ उपस्थित रहते हैं उसी अवस्था में दूसरा दूसरे को देखता, दूसरा दूसरे को सूंघता, दूसरा दूसरे का रस लेता, दूसरा दूसरे का कथन करता, दूसरा दूसरे को सुनता, दूसरा दूसरे को मनन करता, दूसरा दूसरे का स्पर्श करता, दूसरा दूसरे को जानता है।

सलिल एको दृष्टाद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः।
सम्राडिदिति हैन मनुशशास याज्ञवल्क्य ॥

हे राजन् एक निरंजन अद्वैत का समुद्र जो परमात्मा सब का दृष्टा है वही उसका ब्रह्मलोक वह यही आत्मा है।

एषास्य परमागति रेषास्यपरमा सम्पदे शोस्य परमोलोकः एषोऽस्य परमानन्दः।

यही परमेश्वर इसकी परमगति है यही ब्रह्म इस जीव की परम सम्पदा है अर्थात् उत्कृष्ट सम्पत् विभूति है यही इसका परमलोक है वो यही परमात्मा इसका परमानन्द है।

एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रा मुपजीवन्ति ॥

यह उपदेश याज्ञवल्क्य ने बड़े समारोह और विस्तार के साथ किया तो गगनमण्डल में पवित्रताई छा गई और महाराज जनक ने कहा अन्तिम यह अनुभव ॥

अनुपन्था विततः पुराणो मां स्पृष्टो ऽनुवित्तो मयैव, तेन धीराअपियन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गलोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ताः

अति सूक्ष्म फैला हुआ पुराना मार्ग मुझको मिल गया ऊँ अर्थात् ब्रह्मानन्द प्रद होने वाला मार्ग मैंने प्राप्त कर लिया है जिस के द्वारा ज्ञानी स्वर्ग से छूट कर ऊपर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

आत्मानं चेद्विजानीया दयमस्मीति पुरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीर मनु संजुरेत् ॥ चेत् यदि अयं पुरुषः आत्मानं परमात्मानं अहमस्मि विजानीयात्।

यदि पुरुष यह उस परमात्मा को वो मैं ही हूं इस प्रकार जान लेवे तो मैं परमात्मा से भिन्न नहीं अर्थात् वही मेरा आत्मा है तब वह किसी सांसारिक कामना के लिए संतप्त नहीं होता।

यस्यानुवित्त प्रतिबुद्ध आत्मा ऽस्मिन् सन्देहे गहने प्रविष्टः सविश्वकृत् सहि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः सउलोक एव ॥

'अस्मिन् गहने सन्देहे' इस संसार रूपी गहन वन में जिसने अपने आप को मैं वही हूं ऐसा जान लिया है, ज्ञान से पूर्व जिस में अनेक प्रकार के संशय होते हैं और ज्ञान होने पर अपने आप

को परमानन्द अनुभव करता है वही परमात्मा सबका कर्ता होने से विश्व कृत् कहाता है और विविध सृष्टि उसका लोक प्रकाशक है हम उसको इसी मनुष्य शरीर में जान सकते हैं जैसा कि लिखा है।

इहैव सन्तोथ विद्मस्त द्वयं नचे द्वेदिमहति विनष्टिः।
एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्थेथतरे दुःख मेवापियन्ति ॥

यदि इसी शरीर में हम उस ब्रह्म को जान सकते हैं यदि इस देह में न जाना तो दुःख को प्राप्त होना पड़ेगा अर्थात् अपने स्वरूप को बिना जाने दुःख को प्राप्त होते हैं और जो इसको जानते हैं वह परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥

यस्मादर्वाक सम्वत्सरो होभिः परिवर्तते।
तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासते मृतं ॥

जिससे सम्वत्सर रूप काल अपने अवयव भूत अहोरात्र के साथ ही परे हट जाता है अर्थात् ईश्वर को अपनी गति से परिछिन्न नहीं कर सकता इसीलिए विद्वान् लोग सूर्यादि ज्योतियों के प्रकाशक जीवन दाता महाज्योति स्वरूप ब्रह्म की उपासना करते हैं कि हम भी अमृत पद को प्राप्त हो जावें।

मनसैवान द्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्यो समृत्यु माप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

निश्चय करके यह ब्रह्म शुद्ध मन से ही जाना जाता है इस के जानने के लिए अन्य कोई उपाय नहीं और वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है जो इसमें नानापन देखता है इसलिए शुद्ध मन मन्त्रों द्वारा करने की आज्ञा शिवसंकल्पादि मन्त्रों में दी है इन मंत्रों के जपने से मन की शुद्धि द्वारा परमात्मा प्रेम भक्ति द्वारा शीघ्र प्रकाशित हो जाता है इस हेतु के लिये सर्व मनुष्यों को अपने संकल्प परस्पर कल्याणकारी मंगल मय सत्य और

शुद्ध बनाने चाहियें वह इन मन्त्रों के जपने से स्वतः सिद्ध पवित्र होने लगेंगे।

दोहा—मन के हारे हार है मन के जीते जीत।
कहै कबीर हरि पाइये मन ही के परतीत॥
यह मन साधु ले मिलो नहीं तो लेगा जान।
मन मुनसिफ को पूछ ले नीको हो तो मान॥
मन मुरीद संसार है गुरु मुरीद कोई साध।
जो माने गुरु वचन को ताका मता अगाध॥
या तन में मन कहां बसे निकस जाय केहि ठौर।
गुरुगम हो तो पेख ले नहीं तो गुरु कर और॥
नयना माहीं मन बसे निकस जाय सब ठौर।
गुरु गम भेद बताइयां सब सन्तन सिरमौर॥
दूध फाट घृत दूधे मिला नाद जो मिला अकाश।
तन छूटे मन तहां गयाजहां धरी मन आस॥
कबीरा यह गत अटपटी चटपट लखी न जाए।
जो मन की खट्पट् मिटे अघट् भये ठहराय॥

(१२)

ॐ येन कर्माण्य पशो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः यद पूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

(तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव) शुभ कल्याणकारी सुखमय (संकल्प) शुभेच्छा युक्त (अस्तु) हो (येन) जिस मन से (कर्माणि) कर्मोंको (मनीषिणः) विचारवान् (अप्सः) अच्छे स्वभाव के युक्त (यज्ञे) शुभकार्य में (कृण्वन्ति) करते हैं (विदथेषु) पाप से लड़ने में (धीराः) बुद्धिमान् (यत्) जो [अपूर्व] आश्चर्य वान् (यक्षं) पूजनीय (अन्तः) भीतर (प्रजानां) सृष्टि के

भावार्थ—मेरा मन शुभेच्छा युक्त सब प्रजा का कल्याण-

कारी भक्ति भाव से युक्त पूर्ण करुणामय आर्द्र भाव को नम्रता सुशीलता आदि गुणों को प्राप्त हो जिस मन से शुभ कर्म करने वाले कर्म सम्पति को प्राप्त होने वाले बुद्धिमान् विचारवान् पुरुष यज्ञ और पाप से लड़ने में कर्म करते हैं अर्थात् 'कर्मणा सम्पत्ति' कर्म सम्पत्ति कर्मों से जो सिद्धि होती है वह कर्म सम्पत्ति है अथवा 'कर्म्मणः सम्पत्ति' कर्म सम्पत्ति कर्म के अनन्तर जो पुरुष को सन्यास आर्जव नम्रता गम्भीरतादि जो गुण प्राप्त होते हैं वह कर्म सम्पत्ति है। कर्म के मुख्य दो भेद हैं कर्तव्य और चरित। पुनः चरित के दो भेद हैं शील और व्रत। पुरुष के आन्तरिक पवित्र भावो को शील और अन्य पुरुषों से जो बर्ताव है उसको व्रत कहते हैं कर्तव्य कर्म भी दो भागों में विभक्त हैं इष्ट और पूर्त, जलपान के निमित्त कूप बावली तड़ाग प्याऊ आदि अनाथों को अनाथालय धर्मशाला, विद्या के लिए विद्यालय अर्थात् छात्र वृत्ति नियत करना इत्यादि शुभकर्म पूर्त कहाते हैं अब इष्ट कर्म सविस्तार वर्णन किये जाते हैं इष्ट कर्म पांच भागों में विभक्त हैं नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित्त, निषिद्ध, नित्य कर्म।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञश्च तर्पणम्।
होमो दैवोबलि भौंतो नृयज्ञो अतिथि पूजनम्॥

वेद का अध्ययन करना ब्रह्म यज्ञ, तर्पण करना पितृ यज्ञ, होम करना देवयज्ञ, बलि देनी भूत यज्ञ, अतिथि पूजन नृयज्ञ, ये पांच महा यज्ञ हैं और नैमित्तिक कर्म गर्भाधान से आदि लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त सर्व संस्कार दक्षिणायण उत्तरायण यज्ञ नव सस्येष्टि कार्तिक और ज्येष्ठ में जब नवीन अन्न आवे ऋतु यज्ञ प्रायः त्यवहारों पर होती हैं, दर्श पौर्णमास यज्ञ पूर्णमासी अमावस्या को और भी जो निमित्त को लेकर की जाय वह

नैमित्तिक है ग्रह आदि पुत्रेष्टयादि प्रायश्चित उपवासदि प्रायश्चित कर्म हैं निषिद्ध द्वेष त्यागादि जिस मन से इन सब उत्तम कर्मों की सिद्धि होती है और जो सर्व प्रजा में ओत प्रोत है वह मेरा मन सर्वदा कल्याणकारी हो यही विनय मेरी परमेश्वर से है क्योंकि मन के शुद्ध होते ही सब यह शुद्ध ब्रह्म ही प्रतीत होता है।

(१३)

यत्प्रज्ञान मुत चेतो धृतिश्च यज्जयोति रन्तरमृतं प्रजासु
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनःशिव संकल्पमस्तु ।।

(यत्) जो (प्रज्ञान) ज्ञान स्वरूप (उत) और (चेतः) चैतन्य स्वरूप (धृति) धैर्य स्वरूप (यत्) जो (ज्योतिः) प्रकाश रूप (अन्तः) बीच में (अमृतं) अमर (प्रजासु) उत्पन्न हुओं में (यस्मात्) जिससे या जिसके बिना (न) नहीं (ऋते) विना (किंचन) कोई भी कर्म (क्रियते) किया जाता है ।।।।३।।

भावार्थ—जो प्रज्ञान और चित्त और धैर्य रूप है जो सर्व प्राणियों का अन्तरात्मा स्वरूप अविनाशी ज्योति है जिसके विना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो।

(१४)

येनेदं भूतं भुवनम्भविष्यत् परिगृहीत ममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञ स्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ।।४।।

(येन) जिससे (इदं) यह (भूतं) अतीत काल गया हुआ समय (भुवनं) बर्तमान काल (भविष्यत्) अनागत आगे होने वाला काल (परि) पूर्ण रीति से (गृहीतं) जाना जाता है (अमृतेन) अमृत करके (सर्वं) सब (यज्ञ) शुभ कार्य (तायते) रचा जाता है (सप्त) सात (होता) हवन करने वाले (तत्)

वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्पमस्तु) कल्याणकारी हो ॥

भावार्थ—मेरा मन ईश्वर परायण सुखमय हो जावे जिस अमर मन से शीघ्र ही यह सब भूत भविष्यत् वर्तमान जाना जाता है और जिस के द्वारा सप्त होता रूपी इन्द्रियों का यज्ञ होता है ॥

पश्चिमी फ़िलासफ़रों ने मन के ३ भाग किये हैं, प्रथम अनुभव, Feel दूसरी इच्छा, Desire तीसरा मानसिक ज्ञान। अनुभव के पुनः दो भाग किये हैं एक इन्द्रिय ज्ञान दूसरा बृत्ति ज्ञान। काम तत्व समस्त बृत्तियों और वासनाओं का मूल है क्षुधा तृषा काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेषादि इसी से उत्पन्न होते हैं, यही हम में वाह्य पदार्थों के जानने की और उनसे आनन्द वा सुख लाभ करने की इच्छा उत्पन्न करता है स्थूल जगत के साथ हमारे गूढ़ सम्बन्ध का और बारम्बार जन्म लेने का यही कारण है यह भाग मन का अधिक जड़ता के साथ क्योंकि स्थूल देह तो चाकर के समान है जिस पर काम अर्थात् पाशव बृत्ति राज्य करती है क्योंकि मन के दो भाग हैं एक वह जो काम के साथ मिल कर काम मन कहलाता है इससे मस्तिष्क जात ज्ञान उत्पन्न होता है केवल काम पशु समान है जो मनुष्य को नीच कार्यों की ओर ले जाता है और ईश्वर ज्ञान से विमुख रखता है प्राण काम के साथ सम्बन्धित होने से प्राण वायु कहलाता है जो शरीर के प्रत्येक त्रिसरेणु में फैला हुआ है यही इन्द्रिय ज्ञान की निवास भूमि है।

परमाणुओं से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त सम्पूर्ण विश्व नित्य अति सूक्ष्म और अनन्त जीवन के एक रस समुद्र में निमग्न है इस समुद्र का नाम जीव है और जो कुछ इस विश्व में विद्यमान

है इसी का स्थूल रूप है हर एक देहधारी जीव रूपी समुद्र में डूबा हुआ उसके कुछ अंश को अपने में लेकर अपना जीवन विदित करता है इसी अंश को प्राण कहते हैं प्राण ही मनुष्य और पशु पक्ष्यादि जीव जन्तुओं के जीवन का आधार है जो लिंग शरीर में स्थित है इसके और स्थूल देह के मध्य में सेतु के समान है अथवा प्राण उन सूक्ष्म जीवों को कहते हैं जो काम की तरंगें शरीर की थेलियों को स्थूल बनाने के लिये अनावश्यक का त्याग और आवश्यकीय का ग्रहण करती रहती हैं ये भी जीव ही कहलाते हैं जैसा कि कहा है।

जीवो जीवश्च जीवनं जीवो जीवश्च भोजनम्।

यूरोप निवासी पदार्थ विद्याओं के वेत्ताओं को भी इन जीवों का कुछ ज्ञान हुआ है और वे मानते हैं कि मनुष्य के शरीर में वक्टीर्या और अन्य २ जीव पाये जाते हैं जिनसे कई रोग उत्पन्न होते हैं ब्रह्मविद्या के वेत्ताओं ने सृष्टि के प्रत्येक पदार्थों में जीवन माना है वरञ्च कंकर परमाणु और त्रिसरेणुओं में भी जीवन है वास्तव में कोई पदार्थ जड़ नहीं संसार में जड़ चैतन्य और उद्भिद सृष्टि केवल जीव के प्रकाश की न्यूनाधिकता से मानी गई है। 'माईकोवज्र' अर्थात् अति सूक्ष्म जीवों से भी अधिक सूक्ष्म जीव हैं जिनको तेजोमय प्राणी कहते हैं यह अति सूक्ष्म जीवों पर राज्य करते हैं उनके जीवन का कारण हैं और उनको स्थूल देह का आकार बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं यह तेजो मय प्राणी प्राण का सार हैं अग्नि परमेश्वर से निकले हैं। साधारण मनुष्यों को तो यह जगत् तत्वों से बना हुआ प्रतीत होता है परन्तु योगी जनों को ब्रह्म का ही रूप विदित होता है अतएव 'प्राणः' इस वेदान्त के सूत्रानुसार प्राण परमेश्वर का नाम है उसी की धार स्थूल से स्थूलान्तर अर्थात्

परिणत होती हुई चतुर्दश मण्डल अर्थात् १४ लोक निर्माण करती हैं अव्यक्त अवस्था में अग्नि ईश्वर का प्रकाश अथवा नाम है यही एक सत्य है, व्यक्त अवस्था में अग्नि देव तेजोमय प्राणी का रूप धारण करता है यह प्राणी सर्वाकारों के विनाश के पश्चात् भी रहते हैं इस हेतु इनको भक्षण कर्ता भी कहते हैं इनसे उपहित ब्रह्म को महर्षि व्यास 'अत्ता चराचर ग्रहणात्' ब्रह्म को सबका भक्षण कर्ता चराचर के ग्रहण करने से कथन करते हैं इस संसार में प्रत्येक दृश्य पदार्थ इनही प्राणों से बना हुआ है जिस प्रकार जलों से हिम बर्फ कुहरादि बनते हैं एक निराकार जीवन से अर्थात् जीत्व से अनेक देहधारी उत्पन्न होते हैं जैसे ब्रह्माण्ड में वैसे मनुष्य में ये समस्त असख्यात जीव अपनी आकर बनाने की शक्ति सहित प्राण कहलाते हैं जैसा कि भगवान् सनत कुमार नारद के प्रति **छान्दोज्ञ उपनिषद् में** कहते हैं।

प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणंददाति प्राणाय ददाति प्राणोह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राणः आचार्यः

अर्थ—इन्द्रिय प्राण द्वारा व्यवहार करते हैं इन्द्रिय भी प्राण हैं इसलिये प्राण-प्राण के लिए जाता है प्राण ही सबको प्राणन शक्ति देता है सूर्य चन्द्रादि सब प्राण हैं इसलिए प्राण प्राण को देता है प्राण ही पिता प्राण ही माता प्राण ही भ्राता प्राण ही वहिन प्राण ही आचार्य और प्राण ही ब्राह्मण है, यह एक ही देव नाना प्रकार से कल्प पर्यन्त स्पन्द और स्पन्दित रूप से प्रकाशित होता हुआ प्रलय में अथवा समाधि में वरञ्च मोक्ष में आत्मा में लय हो जाता है। प्राण देव के आत्मा में लय हो जाने पर जीव कृतार्थ अत्यन्तानन्द रूप को प्राप्त होता है वेद मंत्रों के शब्द इन्द्रियों के केन्द्र स्थान को कार्य करने की शक्ति प्रदान

न करते हुए आत्मा की ओर आकर्षण कर आत्मा में लय के लिए सहायक होते हैं स्थूल इन्द्रियें अपने केन्द्र स्थान से जो लिंग शरीर में स्थित हैं जिनको आभ्यन्तरिक वा सूक्ष्म इन्द्रियें भी कहते हैं जो वेद मंत्रों से वा ओंकार रूपी वर्णात्मक वा ध्वन्यात्मक शब्द से आकुञ्चित होती हुई अपनी स्थूलता को परित्याग कर शुद्ध मय अर्थात् तेजो मय हो जाती हैं। यह स्मरण रहे कि प्रत्येक शब्द वायु में उसी प्रकार स्पन्द अर्थात् हिल चुल थरथराहट वा कम्प उत्पन्न कर देता है जिस प्रकार झील के स्वच्छ स्वस्थिर जल में एक कंकरी फेंकी या मारी हुई हिल चुल उत्पन्न कर देती है। जब प्राण के द्वारा वेद मंत्र वा ओंकार उच्चारण किया जाता है तो समस्त वायु मण्डल में स्पन्दता उत्पन्न कर आकाश मण्डल में प्रतिबिम्ब खींचता है अर्थात् अंकित करता है उसके द्वारा मन शुद्ध होता है इसको प्रत्येक पुरुष स्वीकार कर लेगा कि दोनों प्रकार की इन्द्रियें क्रियात्मक शक्ति प्रवाहक अथवा आभ्यन्तरिक सूक्ष्म इन्द्रियें ज्ञान वाहिनी अन्तवाहक मन बुद्धि चित्त अहंकार आदि सर्व शक्तियें अपना कुछ भी कार्य संचालित नहीं कर सकती यदि जो अथवा जब तक इनको प्राण प्रेरणा न करें और यह प्रेरणा स्थूल और लिंग शरीर में केवल थरथराहट् के समान रहेगी जब तक काम जो इन्द्रिय ज्ञान का तत्व है वेद रूपी अनुभव में न पलट् दे क्योंकि वेद का अनुभव चौथे तत्व की अर्थात् तुर्यावस्था की चेतना है जब मनुष्य इन्द्रिय ज्ञान और रूपु के वश में होता है तो उसकी चेतना उस समय काम अवस्था में होती है उस समय उसको वेद का अनुभव न हो कर सांसारिक पदार्थों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसके वश हो कर बड़े २ विद्वान् रावण सदृश वेद का अनर्थ कर सांसारिक पदार्थों के विज्ञान ही में वेदों के अर्थों को संघटित करते रहे

निष्प्रेहि विद्वान् गुरु मुख द्वारा सात इन्द्रिय रूपी ऋषियों से मन को पवित्र कर आत्मा रूपी अग्नि में हवन करते हैं जिससे तीनों काल जीत लिए जाते हैं ऐसे पवित्र सर्वोत्कृष्ट वेद मंत्र के ज्ञान को साक्षात करते हुए परमानन्द में निमग्न हो जाते है—

(१५)

यस्मिं नृचः साम यजुंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिताः रथनाभा विवाराः यस्मिं श्चित्त सर्व मोतं प्रजानां तन्मे मनःशिव संकल्प मस्तु ॥५॥

(यस्मिन) जिसमें (ऋचः) ऋग् वेद (सामः) साम वेद (यजूंषि) यजुर्वेद (प्रतिष्ठिताः) रक्खे हैं (रथ नाभौ) रथ नाभिके (इव) समान (अरा) अरा (चित्तं) ज्ञान (सर्वं) सब (ओतं) ओत प्रोत है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव) सुख रूप (संकल्प) फुरना (अस्तु) हो ॥

भावार्थ—मेरा मन दिव्य विचार युक्त और दूसरों के प्रति सुख स्वरूप फुरना वाला हो जिस मन में ऋक् साम यजु और जिसमें अथर्व वेद उस प्रकार रक्खे हैं जैसे चक्र की नाभि में अरा संयुक्त होते हैं और जिसमें प्रजा के पदार्थों का ज्ञान और तत्व ज्ञान ओत प्रोत हैं अर्थात् जिस प्रकार वस्त्र में तन्तुओं की सन्तति होती हैं उसी प्रकार मन में प्रजा का ज्ञान प्रतिष्ठित है ॥

व्याख्या—इस मंत्र में उस मन के प्राप्त कर लेने को सब जीवों के प्रति वेद भगवान् आज्ञा देते हैं कि प्रार्थना द्वारा उस मन को प्राप्त हो जो शुद्ध महा पवित्र मह तत्व की रश्मि कि जिस में परमेश्वर का सम्बन्धी देवता विषयक ज्ञान ऋग् वेद भुवर लोक सम्बन्धी प्राणायाम का ज्ञान यजुर्वेद स्वर्ग अर्थात् मोक्ष सम्बन्धी विषयक साम वेद ओत प्रोत हों और जिसमें सब

प्रजा के चिन्तन और प्रादुर्भाव का ज्ञान पट में तन्तु सदृश हो जैसा कि अथर्व वेद के १९ वें काण्ड में ऋषि अंङ्गिरा समाधि के अनन्तर प्रकाशित करते हैं।।

अष्ठाविंशानि शिवा विशग्मानि सहयोगं भजन्तु मे। योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु।

हे परमैश्वर्य युक्त मंगलमय परमेश्वर आपकी कृपा से मुझ को उपासना योग प्राप्त हो तथा उससे मुझको अपार सुख भी मिले इसी प्रकार आपकी कृपा से दश इन्द्रिय हस्त पाद गुदा लिंग वाणी यह पांच कर्मेन्द्रियां और त्वचा श्रोत्र चक्षु रसना घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रियां और दश प्राण सांस को बाहर छोड़ना इससे वृत्ति उपन्न होती है और हिरण्यगर्भ के श्वास से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है वहिर्गामी वायु की संचालक शक्ति को प्राण कहते हैं श्वास को भीतर खेंचना इसके द्वारा वृत्ति और वृत्ति का कार्य भेद ज्ञान लय होना है इसलिए हमारे पूर्वज योगियों के द्वारा वाह्य शुद्धि के निमित्त वहिर्गामी शक्ति से दोनों ओष्ठों को सम कर कण्ठकूप के ऊर्ध्वभाग में ओंकार का नाद घोषित करते थे जिसके द्वारा वायु का धावन भाजना चलना आकुञ्चन सिमटना प्रसारण फैलना वियोग अलग होना रागद्वेष भय लज्जा मोह ये पाँच आकाश के गुण हैं ओं ये सब साम्य अवस्था में होकर क्षय हो जाते थे तब अपान आयु द्वारा 'सोऽहं शब्द' उच्चारण कर अस्थि मांस त्वचा नाड़ी रोम ये पांच पृथिवी के गुण श्लेष्म, कफ मूत्र, पसीना शुक्र शोणित ये पांच जल के गुण तथा क्षुधा तृषा निद्रा आलस्य संयोग होना ये पांच अग्नि के इन गुणों को साम्य अवस्था में कर षट्चक्रों का नाभि के और मूलाधार के समीप हो कर मेरु दण्ड को चक्र देकर ज्ञान प्रदीप्त कर त्रिकालज्ञता द्वारा कर्मबन्धन

को काट ब्रह्मरूपी समुद्र में एकीभाव हो जाते थे। व्यान सर्वत्र-शिराओं में और ब्रह्माण्डगत अग्नि का रूप धारण करने वाली वायु इसी प्रकार उदान तडितवर्ण कंठ के ऊर्ध्वभाग में समान रसों को विभक्त कारक और संग रखने वाली वायु पाँच उपप्राण (नाग) कूर्म कृकल देवदत्त धनंजय ये दश प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार विद्या स्वभाव शरीर और बल ये २८ सब कल्याणों में प्रवृत्त होके उपासना योग को सदा सेवन करें तथा हम भी उस योग के द्वारा ऋग् जैसी वाणी साम जैसा प्राण यजु जैसा मन लाभ करते हुए मोक्ष से मोक्ष को रक्षा से अत्यन्त रक्षा को प्राप्त हुआ चाहते हैं इसलिए हम लोग रात दिन आपको नमस्कार करते हैं॥

भूयानरात्या शच्या पतिस्त्व मिन्द्रासि विभुः
प्रभुरितित्त्वो पास्महे वयम् नमस्तेऽस्तुपश्यत् पश्यमा पश्यत

'भूयानरात्या', हे जगदीश्वर आप सब प्रजा वाणी और कर्म इन तीनों के पति हैं तथा सर्व शक्तिमानादि विशेषणों से युक्त हैं, जिससे आप अरात्या, अर्थात् दुष्ट प्रजा मन की अशुद्धि मिथ्या रूप वाणी और पाप कर्मों को विनाश करने में अत्यन्त समर्थ हैं उस आपको विभु सर्वव्यापक प्रभु सर्व ओर ओत प्रोत महानन्द सर्वसामर्थ्य वाले जान के हमलोग आपकी उपासना करते हैं, तो हे जीवो ! परमेश्वर सबको उपदेश करता है, कि हे उपासक लोगो तुम मुझको अत्यन्त दृढ़ विश्वास और सच्चे प्रेमभाव से अपने आत्मा में सदा देखते रहो तथा मेरी आज्ञा और वेदविद्या को यथावत् जान के उसी रीति से आचरण करो। इस कल्याणकारी आकाशवाणी अनुभव प्रकाशक ईश्वर आज्ञा के अनुसार मनुष्य भी ईश्वर से प्रार्थना करें कि हे अनन्त दयालो ! सर्वशक्तिमन् परमेश्वर आप कृपादृष्टि से हमको सदा

देखिये इसलिए हमलोग आपको सदा नमस्कार करते रहें, और कहते हैं कि यह हमारा मन शिवसंकल्प मय होकर आप में ही लीन हो जावे यथा ॥

(१६)

ऊँ सुषारथि रश्वानिव यन्मनुष्या न्नेनीयते भीशुभिर्वाजिनइव हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥

(सुषारथि) अच्छा सारथि अर्थात् रथवाहक (अश्वान्) घोड़ों को (इव) समान तरह (यत) जो (मनुष्यान्) मनुष्यों को (नेनीयते) प्राप्त कराया जाता है (अभी शुभिः) बागों से (बाजिनः) घोड़ों को (इव) जैसे (हृत्) हृदय (प्रतिष्ठं) रक्खा है स्थिर है (यत्) जो (अजिरं) जरा रहित (जविष्ठं) वेगवान् (मे) मेरा (मनः) मन (शिव) कल्याणकारी शुद्ध (अस्तु) हो ॥ जो मन मनुष्यों को अर्थात् सर्व प्राणियों को इस प्रकार प्रेरता है जैसे प्रवीण निपुण सराथि कृष्ण सम, घोड़ों को चलाता है तथा प्रग्रहों से अर्थात् रस्सियों से घोड़ों को रोकता है और जो मन हृदय में प्रतिष्ठित है और जो जरा वृद्धावस्था से रहित अर्थात् बुढ़ापे से रहित है और सबसे अधिक वेगवान् है वह मेरा मन सच्चिदानन्द परमेश्वर के ध्यान में लीन हो जावे ।

व्याख्यान—सच्चे मन से परमेश्वर की आज्ञानुसार जो जीव अर्थात् मनुष्य, देवता, असुरादि, कोई भी हो प्रार्थना, उपासना, और स्तुति, करने लग जाता है तो कौन सा पाप है जो क्षय न हो जाय सूर्य उदय हो और प्रकाश न हो यह तो कदाचित् हो भी जाय परन्तु प्रेमभाव से परमेश्वर की आज्ञानुसार वेदमंत्रों से पाप और जन्म मरण रूपी दुःखों का अत्यन्ताभाव न हो यह कदापि काल नहीं हो सकता धर्मराज

अर्थात् मृत्यु काल भगवान् अपने शिष्य जीव रूप नचकेता को उपदेश देते हैं—(कठ)

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रह मेव च ॥

अर्थ—(आत्मानं) आत्मा को (रथिनं) रथि (विद्धि) जान (तु) और (शरीरं) शरीर को (एव) निश्चय करके (रथं) रथ जान (तु) और (बुद्धिं) बुद्धि को (सारथिं) सारथि (विद्धि) जान (च) और (एव) निश्चय करके (मनः) मन को (प्रग्रहं) रासें जान ।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं भोक्ते त्याहुर्मनीषिणः ॥

(इन्द्रियाणि) देशों इन्द्रियों को (हयान्) घोड़े (आहुः) कथन किया है (तेषु) उन इन्द्रियों में (विषयान्) शब्द स्पर्शादि विषयों को (गोचरान्) मार्ग कहते हैं (मनीषिणः) मनन शील पुरुष (आत्मेन्द्रिय मनो युक्तं) शरीर इन्द्रिय तथा मन इन तीनों से युक्त आत्मा को (भोक्ता) भोगने वाला (इति आहुः) ऐसे कथन करते हैं ।

यस्त्व विज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
यस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥

(यःतु) जो तो (अविज्ञानवान्) विषयों में लम्पट् अज्ञानी पुरुष (अयुक्तेन मनसा) संशयग्रस्त गुरु रहित मनसे सदा वर्तमान् (भवति) होता है (तस्य) उसके (इन्द्रियाणि) इन्द्रिय (सारथेः) सारथि के (दुष्टाश्वा इव) दुष्ट घोड़ों के समान (अवश्यानि) वश में नहीं होते ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथे ॥

(यःतु) जो तो (विज्ञानवान) सम दमादि सम्पन्न अधिकारी (युक्तेन मनसा) अभ्यास तथा वैराग्य से मन को जीतने वाला सदा युक्त (भवति) होता है (तस्य) उसके (इन्द्रियाणि) इन्द्रिय (सारथे) सारथि के (सदश्वाः इव) शिक्षित घोड़ों के समान (वश्यानि) वश में होते हैं ॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः
नस तत्पद माप्नोति संसारं चाधि गच्छति ॥

(यःतु) जो पुरुष तो (अविज्ञानवान्) विवेक रहित अज्ञानी (अमनस्कः) अवशीकृत मन वाला अर्थात् मन को शुद्ध कर न जीतने वाला सदैव (अशुचिः) अपवित्र बुरे संस्कारों से जिसके भाव मलीन हो रहे हैं लोभ मोह से युक्त विवेक शून्य मलिनात्मा पुरुष (भवति) होता है (स) वह (तत्पदं) ब्रह्म के स्वरूप को अर्थात् अनन्त अपार मोक्ष रूपी अद्वैतानन्द को (नाप्नोति) प्राप्त नहीं होता (च) और बार २ (संसार) जन्म मरण रूप अपार दुःख मय संसार को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
सतु तत्पदमात्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥

(यःतु) जो पुरुष तो (विज्ञानवान्) विवेकी अर्थात् विवेक वैराग्य, सम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षुता, और पद के तत्व का ज्ञाता सर्व साधन सम्पन्न हो कर (समनस्कः) निरुद्ध मन वाला मन को स्वरूप में लय करने वाला (सदा) सर्वदा (शुचिः)पवित्र भाव युक्त(भवति)होता है (सतु) वही (तत्पदं) परमात्मा के स्वरूप को अर्थात् अपने अनन्त अपार सच्चिदानन्द स्वरूप को (आप्नोति) प्राप्त होता है (यस्मात्) जिस से (भूय) फिर कभी भी (न जायते) उत्पन्न

नहीं होता ॥

वे ही पुरुष जो ईश्वराज्ञा द्वारा आत्मा को पवित्र बुद्धि को विश्वास श्रद्धा युक्त और मन को प्रेम से सत्य प्रतिज्ञा आदि से अलंकृत् अर्थात् सुशोभित नहीं करते उनकी इन्द्रियें यहां तक विषयों में आसक्त होती हैं कि नेत्रों में स्वरूप वन्त स्त्र्यादि को अवलोकन कर रूप की फांसी में फंस कर मन की बाग छूट कर महान् दुर्दशा के भागी होते हैं तात्पर्य यह है कि जिनकी बुद्धि में गुरु भक्ति दृढ़ विश्वास और प्रेम नहीं है, वह दुष्ट रथी की न्यांई अपने मन रूपी बाग को पकड़ इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वेद रूपी सत्मार्ग पर न चला कर असत्य रूपी मार्ग में गमन कर संसार नीच योनि और महा व्याधियों को प्राप्त होते हैं और जिस विवेकी की भवानी बुद्धि महादेव रूपी परम गुरु प्राणनाथ परमात्मा के विश्वास और प्रेम से परिपूर्ण होती है तो मन भी तुरन्त अपने लक्ष्य विषय की ओर इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वशीभूत कर परम मोक्ष को सदैव के लिए प्राप्त हो जाता है।

सचमुच शरीररूपी रथ में जीवात्मा रूपी साहूकार सवार और बुद्धि उसका साईस और मन लगाम और इन्द्रिय घोड़े हैं और यह बग्गी विषयरूपी सड़क पर चलाई जा रही है जिसका विज्ञान रूपी सारथि है वह लगाम को बड़ी सावधानी से पकड़ इन्द्रिय रूपी घोड़ों को शुद्ध विषय वेद मार्ग पर चलाकर अंतिम जाना कहां है जो विष्णु का परम पद सर्वोत्कृष्ट शुद्ध स्थान है जैसा कि धर्मराज कहते हैं।

यस्तु विज्ञानवान् भवति मनः प्रग्रह वान्नरः
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

लक्ष्य तो ब्रह्म तत्व है ब्रह्म साक्षात्कार बिना निर्वाह कहां

अनात्म दृष्टि दुःख रूप है, सुखी २ उत्साह पूर्वक चित्त में स्नेह मोहादि रखते हो तो भय्या काले नाग को गोद में दूध पिला २ कर पालते हो। सत्य स्वरूप एक परमात्मा को छोड़ और कोई विचार मन में रखते हो तो बन्दूक की गोली कलेजे में क्यों नहीं मार लेते। मार्ग में कहां तक डेरे लगावोगे मार्ग में कहां तक महमानियां खावोगे दुनियां सराय में मा तो नहीं बैठी यदि सुख चाहो तो चलो शिव के कैलाश को। विज्ञान रहित अयुक्त मन वाले के इन्द्रिय वेवश बिगड़े घोड़ों की तरह अभीष्ट स्थान तक तो क्या पहुंचना वरंच रथ को और रथ में बैठे को कुओं और गढों में जा गिराते हैं जहां रोना और दांत पीसना होता है, यदि इसी जन्म के घोर रौरव से बचना इष्ट हो तो घोड़ों को सधाना और सीधी राह पर चलाना रूपी यम नियम की आवश्यकता है, पर लाख यत्न कर देखो जब तक तुम्हारा साईस सारथि धुंधली आंखों वाला काणा सा है तब तक कीचड़ में डूबोगे, रेत में धसोगे, गढों में गिरोगे, चोटें खावोगे, चिल्लाओगे, बाबा साँसारिक बुद्धि को सारथि बनाना दुःख ही दुख पाना है। अब सुनो बात—जय इसी में है कि अपनी मन रूपी बागडोरी देदो उस कृष्ण के हाथ बस फिर कोई विघ्न नहीं। वह इस संसार रूपी कुरुक्षेत्र रणभूमि से जय के साथ ले ही निकलेंगे रथ हांकने में तो जगद् गुरु प्रसिद्ध हैं आवश्यकता है हरि को रथ घोड़े और बागें सौंपकर पास बिठाने की, अर्थात् उपासना की।

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच॥

अर्थ—शासक गुरु भगवान् कृष्ण अपने परम शिष्य अर्जुन के लिए यह कहते हैं हे अर्जुन सर्व धर्मों को परित्याग कर केवल

मेरी अनन्य शरण अर्थात् एकताई को प्राप्त होजा, शोक न कर मैं सब पापों से छुड़ा दूंगा यह जगद्गुरु कृष्ण वाक्य अत्यन्त आदरणीय तथा माननीय और अटल हैं। यह स्मरण रहे कि यदि कांटों पर पड़ जाने से परमेश्वर याद आता हो तो प्यारे जब संसार के काम धन्धों में उलझ कर परमेश्वर विस्मरण होने लगा है तो झटपट् अपने तईं नुकीले काटों पर गिरादो और कुछ नहीं तो पीड़ के बहाने तो राम याद आही जावेगा, तात्पर्य यह है कि वह दुःख भी अच्छा है जिस में पीड़ के बहाने तो राम याद आता है वह सुख भी दुःख है जिसमें अहंकार और अभिमान शत्रु प्रबल आ जाएं कि जिससे विषय वासना द्वारा सर्व साधारण पुरुषों की वह गति होती है जैसे जल में पड़े हुए तूंबे की आंधी और अन्धि के आधीन होगी या यों समझो कि अयोगी सर्व साधारण मनुष्यों का मन एक मरकट् है, बन्दर स्वभाव से चंचल होता है और फिर उसको किसी ने अहंकार वा अभिमान रूपी मद्य पिला दी तो फिर तो कहना ही क्या इतने में द्वेष का बीछू डस गया अब तो खट्पट् तीव्र मची, लगा न्यारे वारे करने, और आकाश पाताल के कुलाबे मिलाने। इस अवस्था में मन का डाटना महान् कठिन हो जाता है, जैसा कि अर्जुन कहते हैं।

चंचलं हि मनः कृष्णः प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

हे कृष्ण! यह मन बड़ा चंचल है देह और ईन्द्रिय गणों को क्षोभ कारक है बड़ा बलवान् है और दृढ़ है इस मन को रोक लेना मेरी समझ में ऐसा कठिन है जैसा प्रबल वायु का रोकना। श्री भगवानोवाच—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेनतु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

हे महाबाहो निःसन्देह मन बड़ा चंचल है रुक नहीं सकता है, परन्तु हे कौन्तेय अभ्यास और वैराग्य से निग्रह हो सकता है।

यह जीवात्मा साहूकार है अन्तःकरण सम्पत्ति है मन भूत है यही चालीस सेरा ऊत है या यों कहो कि तोल में चालीस सेर का एक मन होता है जो मन को अपने वश में कर लेता है उसको ४० शेर अर्थात् बनके सिंह वश में करने कुछ दुर्लभ नहीं। इस मनकी इच्छाशक्ति ही एक भाला है, यह स्मरण रहे कि इच्छाशक्ति वो शक्ति है जोकि चिन्ता की लहरों को ब्रह्म-रन्ध्र से आकर्षण कर मस्तिष्क के परदों में होती हुई ईश्वरेच्छा अथवा आकाश शक्ति को स्पन्दित कर संसार मार्ग को दिख-लाती हुई यथोचित् स्थानों पर संकल्पों को पहुंचाती रहती है जब इच्छा शक्ति गुरु महात्मा के शब्द ज्ञानानुसार आकाश की शक्ति को अपनी आधीनता में कर लेती है तो इतनी सविस्तर बन जाती है कि जड़शक्ति उसके मार्ग में प्रतिबन्धक नहीं हो सक्ती, जब ये इच्छा शक्ति काम के वेगों से मलीन हो जाती है तब ही जीव उदर के महासंकट् रूपी करागार में पड़ा हुआ जन्ममरण रूपी शत्रुओं से व्यथित होता है, यही चालीस सेर की तोलरूपी भाला है जब गुरु मिल जाते हैं तब इस जीव के उद्धार निमित्त एक ऐसी युक्ति द्वारा मेरुदण्ड अर्थात् पीठ की हड्डीरूपी बांस जो ३३ हाथ अर्थात् गाठों का बना हुआ है कि जिस पर मज्जा तन्तुओं सहित सर्व शरीर का स्वत्व निर्भर है इसको लखाते हुए ११ रुद्रों को प्रकाश कर जीव को एक ऐसी युक्ति बतला देते हैं जिससे कि मन प्राणों के संचालन द्वारा इसी शरीर में वाह्य न जा कर मूलाधार से ले कर अनाम धाम पर्यन्त उतरता चढ़ता रहता है या यों समझो कि

गुरु इस जीव को **'ओम्'** और **'सोऽहं'** का श्वासके साथ अजपा जापको साक्षात्कार करा देते हैं **'ओ३म्** शब्द **'परा पश्यन्ति मध्यमा'** अर्थात् मन आदिका रूप धारण करता हुआ वैखरी वाणी के ये सात स्वर उत्पन्न करता है ॐ **१ षड़ज २ रीषभ ३ गान्धार ४ मध्यम ५ पंचम ६ धैवत ७ निषाद** और इनके द्वारा सात रंगों की धारें निकलने लगती हैं इन से सर्व सृष्टि परमाणु रूप धारण कर सम्बन्धित हो उत्पन्न होती है यह सब कुछ ओंकार ही है, जो भीतर से बाहर को श्वास द्वारा शब्द निकलता है, सोऽहं शब्द की वह शक्ति है जो अपान द्वारा प्राण को खींचते समय आत्मा में कार्य सहित अज्ञात को लय कर सब में सब को अपना आपा जानती है।

परमानन्द की प्राप्ति होने का सुगम उपाय यह है कि नियत समय पर सिद्धासन मार सीधे शरीर से बैठ जाना चाहिये पूर्व स्व गुरु अर्थात् अपने योगोपदेष्टा गुरु को नमस्कार कर किसी इष्ट देव की अथवा गुरु की पवित्र मूर्ति का खुले हुये नेत्रों से न्यून से न्यून आध घंटा ध्यान करें यदि किसी कारण से मूर्ति प्राप्त न हो तो त्रिकुटियों के मध्य भाग अथवा नासाग्र का ध्यान कर लेवे तदनन्तर आंखों को बल पूर्वक मींच कर दसमें द्वार की ओर उलटी पलटने का अभ्यास करे तत्पश्चात् दायें कान को और बायें कान को उंगली से बन्द कर दक्षिण कर्ण की ओर श्रुति को लगावे तब भौंरे और झींगुर चिड़ी चेंकुला आदि की सी आवाज़ भिन्न २ और विशेष सूक्ष्म शब्दों पर ध्यान देने से घंटे का शब्द सुनाई देने लगता है यह प्रथम नाद है इसके श्रवण से मन की जो धारें हृदय के अनुसार ब्रह्मरन्ध्र में एकत्रित हो रही थीं वह परिवर्तित और ऊर्ध्व जो लगातार सोचने से ईश्वरेच्छा आकाश शक्ति मस्तिष्क ने उत्पन्न

होती है इच्छा शक्ति उस शक्ति की पथदर्शक होती है जो मस्तिष्क के पर्दों में से निकल बाहर फैलती है यह सब की सब श्रुति के आधीन हो लयता की ओर सूक्ष्म तड़िताकाश के छिद्रान्वेषों को पूरित करती हुई अपने प्रभावाधीन उष्णता और प्रकाश को वेगवान् कर जो विचार के मानुषी मस्तिष्क की बुद्धि वा प्रकाश का कौंधा है वह जीवात्मा को अज्ञान रूपी बन्धन में से आकर्षण और विकर्षण रूपी शक्तियों द्वारा संचित् क्रियमाण कर्मों को दग्ध करने लगता है और शरीर कृश और हल्का जगत् से उदासीनता और प्रीतम के प्रेम का प्रवाह बहने लगता है यह प्रथमावस्था है। इस प्रथमावस्था को जो पवित्र बुद्धि रूपी भवानी काम संयुक्त मन में बांध कर और उस के मस्तक पर ओंकार बिन्दु लगा कर अनहद शब्द पर ऊपर छोड़ देती है तदनन्तर सूत्रात्मा और धनंजय वायु ऊर्ध्व गति कर महतत्व की रश्मि अपने केन्द्र स्थान की ओर चल कर काम रूपी मन आत्मा के वश में हो कर नष्ट हो जाता है तब प्राणों की सूक्ष्म और अघन धारों को आकर्षण कर आत्मा स्थूल घन धारों को सूक्ष्म धारों की स्पन्दता द्वारा बदल कर आकर्षण करने लगता है तब पांच प्रकार की चित्त वृत्ति प्रलय को प्राप्त होकर आत्मा परमात्मा से एकीभूत होकर प्राणों की सर्व धारों को अपने आपे में लय करने लगता है। दूसरी अवस्था में सूक्ष्म २ परमाणु रक्तनील पीतादि सुन्दर रूप बदलते हुए दीखने लगते हैं और तदनन्तर सायं २ करने वाले सब शब्द बन्द हो कर चमकते हुए तारों का सा प्रकाश दिखाई देने लगता है इस अवस्था में सत्य ग्रहण को मन उद्यत हो जाता है शंख और ओं की एकाकार ध्वनि से प्रेम की लहरें जो कि वृत्ति के मुख और चाल को निश्चित कर उसके शीर्ष को आत्मा की ओर मोड़ देती हैं

पुनः हल्की धुंधली फैली हुई श्वेत ज्योति दिखाई देती हैं, तत्पश्चात् धीमी २ महीन सारंगी किंकरी मधुर वायु दल की घोर वीणा वांसरी आदि की वाणी को अर्थात् ध्वनि को ग्रहण कर सप्तावर्ण के दुर्ग रूपी शरीर में से निकल जीव परमेश्वर के रूप को प्राप्त हो जाता है। इस दूसरे प्रकार की अवस्था में ग्रन्थ के विस्तार के भय से विशेष वैज्ञानिक युक्तियों का प्रयोग न कर सामान्य रीति से सर्वावस्थाओं का दार्ष्टान्त में समावेश कर दिया है अधिक वर्णन और स्थान पर किया जावेगा अब कुछ प्रमाण भी उद्धृत कर पाठकों को परिचित करते हैं।*

समेशुचौ शर्कराबन्हिबालुका विवर्जिते शब्द जलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले नतु चक्षु पीड़ने गुहा निवाता श्रयणे प्रयोजयेत्॥

अर्थ—योग का अभ्यास ऐसे स्थान में करना चाहिये (समे) चौरस (शुचौ) पवित्र (शर्करा) बजरी—महीन सूक्ष्म कंकरी (वह्नि) अग्नि (वालुका) बालु से (विवर्जिते) रहित (शब्द जलाश्रयादिभिः) शब्द और सिलावी आदि से रहित (मनोऽनुकूले) मन के अनुकूल (नतु चक्षु पीड़ने) आंखों को दुःख न देने वाले (गुहा निवाता श्रयणे) एकान्त वायु के झोकों से रहित देश में (प्रयोजयेत) योग करे, अर्थात् ऐसा स्थान हो जहां ऊंचा नीचा न हो, दुर्गन्ध न हो, पत्थर की बजरी चुभती न हो, अग्नि का ताप न हो, बालु उड़कर शरीर में न लगता हो, क्रूर वा ऊंचा शब्द न सुनाई देता हो, जल की सील न हो और आदि शब्द से सर्प भेड़िये आदि का स्थान भी न हो, देखने में नेत्रों को बुरी लगने वाली कोई वस्तु सन्मुख न हो, एकान्त हो, वायु

* श्री महाराज जी ने "परमानन्दामृत (जींद से प्रकाशित "सदुपदेश") पृष्ठ १०७ से ११५" व "दत्तात्रेय गुरु मूर्तिस्तोत्र" तथा १९०९ में निर्मित अपने एक "सातो रंग निरखता" के शब्द में भी इसी साधना को स्पष्ट किया है (सत्य शब्द संग्रह)

प्रवल न चलता हो, ऐसे मन के अनुकूल अर्थात् मन भावते देश में योगाभ्यास करना चाहिए और भी कहा है—

विविक्त देशे च सुखासनस्थः शुचि समग्रीव शिरः शरीरः।
अन्त्याश्रमस्था सकलेन्द्रियाणि निरुद्ध भक्त्यास्वगुरुं प्रणम्य ॥

अर्थ—एकान्त स्थान में सुख पूर्वक आसन से बैठ कर तथाच योगशास्त्रे 'तत्रस्थिर सुखमासनम्' निरोधावस्था में सुख पूर्वक स्थिति करने के लिए जैसी रुचि हो वैसा आसन वा सिद्धासन से सुख पूर्वक स्थिर हो सब शरीर ग्रीवा और वक्ष-स्थल उभरा हुआ समासन लगा कर अन्तिम आश्रम अर्थात् वैराग्य में निमग्न होकर इन्द्रियों को निरोध कर अत्यन्त प्रेम और भक्ति भाव सहित अपने स्वगुरु परमानन्द स्वरूप को प्रणाम करे तदन्तर—

प्राणान् प्रपीड्ये संयुक्त चेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छवशीत
दुष्टाश्च युक्त मिव वाहनेन विद्वान् मनो धारयेता प्रमत्तः ॥

अर्थ—प्रमाद रहित योग विद्या में निपुण इस योगाभ्यास में प्राणादि वायुओं को खेंच और रोक कर अच्छी युक्त की है चेष्टा जिस ने ऐसा योगी प्राण के निर्बल प्रतीत होने पर नासिका से शनैः शनैः बाहर निकाल दे बिगड़ैल घोड़े जुते हुए रथ के समान इस प्राण को और मन को धारण करे तात्पर्य यह है कि योगी को युक्तचेष्टा वाला होना चाहिये जैसा कि भगवान् कहते हैं।

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु
युक्त स्वप्नाव बोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

युक्ति के आहार अर्थात् जीवन उपयोगी अल्पाहार और युक्ति के भ्रमण व्यवहार कर्मों में परिमित चेष्टा सोना और जागना भी युक्ति के द्वारा करने से योगी का दुःख नाश हो

जाता है और अप्रमत्त प्रमाद रहित तथा विद्वान् भी होना चाहिये वह अभ्यास के समय प्राण का रेचन करे अर्थात् शनैः २ प्राण को बाहर निकाल दे और जितना काल उचित समझे उतना काल बाहर डाट जिस नासिका छिद्र में वायु का विशेष संचार हो उसके द्वारा पूरक कर कुम्भक करे उसके करने से मन नाद में अनायास रुद्ध होकर ऊपर चढ़ने लगता है तदनन्तर परमेश्वर के प्रकाश करने वाले ये चिन्ह भासने लगते हैं।

नीहार धूमार्कनिला नलानां खद्योत विद्युत स्फटिक शशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्ति कराणि योगे ।।

योग करते समय या यों कहो ओं रूपी नाद में निमग्न हो कर मन रूपी कीट प्राण रूपी भित्ति द्वारा आत्मा रूप मन्त्रि के समीप चलता है तो रेशम तन्तु आदि निम्न लिखित प्रकाशों का आलोचन कर वा आलम्बन कर परमेश्वर राजा को प्राप्त हो सम्पूर्ण प्रकृति का स्वामी हो जाता है वह रूप ये हैं प्रथम निहार कुहर सूक्ष्म २ त्रिसरेणु धूम्र गोल स्याम चक्राकृति सूर्य समान वायु समान अग्नि समान प्रकाशरूपी मण्डलों को उलघन कर खद्योत पटवीजना के पक्ष की चमचमाहट तुल्य प्रकाश विद्युत स्फटिक शशि सदृश प्रकाश मण्डलों को अवलोकन कर **"योगाग्निमयं शरीरं प्राप्तस्य"** योग के तेजो मय शरीर को प्राप्त हो कर **"तस्य निरोगः न जरा न दुःखं भवति"** उस योगी को न जरा जीर्णावस्था न रोग न कोई दुःख होता है अन्तिम वह परमेश्वर रूप हो जाता है इत्यादि उक्ति और युक्तियों द्वारा यह हमारा मन शुद्ध होकर आपको प्राप्त हो जावे और आप की कृपा की सहायता से हम लोगों को इस प्रकार आप के निर्देशित वेदरूपी शतपथ पर सदैव चलावे जैसा कि अच्छा सारथि घोड़ों सहित रथ को सीधे मार्ग पर चलाता है जीव

परमेश्वर से शिव संकल्प रूपी षड़ मन्त्रों द्वारा अपने मन को शुद्ध कर अत्यन्त मोक्ष को प्राप्त हो जाता है, और जिससे कि त्रिविधा दुःख का अभाव हो जाता है।

(१७)

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढ मस्य पांसुरे ।।

(इदं) यह जो कुछ है वह विभाग को प्राप्त होकर अवस्थित है (तद्विष्णुः) उसको विष्णु व्यापक परमेश्वर (विचक्रमे) पाद विक्षेप से व्यापक करता है किस प्रकार से करता है सो कहते हैं (त्रेधा) तीन प्रकार के भाव से अर्थात् पृथिव्यामन्तरिक्ष द्यवीति शाकपूनु निरुक्त में लिखा है पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौलोक रूपी पादों करके विष्णु व्यापक है (अस्य) इसका (पा ँसुल) धूली रहित अन्तरिक्ष में नहीं दीखता "तत्पंद विद्युताख्यं, विद्युतं ब्रह्ममेवाहुः इतिश्रुतेः" वह पद धूली के बिना ही विद्युत-नाम से प्रसिद्ध तड़िताकाश में शुद्ध प्रकाश स्वरूप आनन्दमय है विस्पष्ट तात्पर्य यह है कि विष्णु भगवान् ने इस प्रतीयमान जगत् को जब आक्रमण किया उस समय तीन प्रकार से अपने चरणों को स्थापित किया इनही विष्णु भगवान् के धूलीयुक्त चरणों में यह सब जगत उनके अन्तर्भूत ही समाया हुआ है जिस प्रकार सूर्यरश्मि अर्थात् मयूखा अपने केन्द्र स्थान में वरंच प्रत्येक पदार्थों को प्रकाशित करती हुई सबों में जीवन सब जीवनों के पीछे किन्तु आभास द्वारा करने वाली सर्व सृष्टियों को मूला ज्ञान तूला ज्ञान के कार्य जन्म मरण असार संसार समुद्र में प्रदीप्त हो प्रभासित हैं व्याख्या यह है कि सर्व-संसार तीन प्रकार का ही प्रतीत होता है ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, ध्याता, ध्यान, ध्येय, भूमि, अन्तरिक्ष

वायु, तड़िताकाश, और शब्दकाश, और प्रकाश, ये इत्यादि मुख्य तीन मण्डल और भी त्रिपुटि अन्तः करण के आक्षेप विक्षेप आवरणरूपी मल विक्षेप आवरण दोष हैं कर्म उपासना ज्ञान द्वारा ये नष्ट होते हैं दृष्टान्त जैसे आदर्श में तीन प्रकार के दोषों के होने से कोई पुरुष अथवा किसी पदार्थ का मुख वा प्रतिविम्ब उसमें नहीं पड़ सक्ता यदि शीशे पर मैल हो तदपि अपना मुख समक्ष में अवलोकन नहीं कर सक्ता यदि मल भी दूर किया परन्तु नेत्र में आवरण हो तब भी कोई अपना मुख नहीं देखा सक्ता यद्यपि यह भी दोष दूर कर लिया तथापि शीशे का विक्षेप हिलना हो तब भी हम उसमें मुख नहीं देख सकते इसी प्रकार सब दोषों को नष्ट कर उसमें समान प्रतिविम्ब देखते हैं उसी प्रकार अपने मन को निष्कामरूपी अर्थात् परोपकार निमित्त वैदिक कर्मों से पवित्र कर पापरूपी मल को नाश कर देते हैं और अष्टांग योगरूपी उपासना द्वारा चित्त के विक्षेप को अवरोध कर ब्रह्म के साक्षात् ज्ञान द्वारा मूलाविद्या को नाश कर अपने आपे में आपको ब्रह्मरूप से जानते हैं, तब वह परमेश्वर को अपने आप स्वतःसिद्ध देखते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं, येही तीन प्रकार का जगत् का ज्ञान चौथा तुर्य्यावस्था स्वर्ग का ज्ञान है, वही विष्णु के चरणों से अर्थात् पादों से ओत प्रोत हो कर पाया गया है इसी को स्वर्ग और ब्रह्मलोक कहते हैं, इसको आध्यिक कथन किया है इसमें प्राणियों की अभ्याहत गति होती है आजकल के पुरुषों को इसी मण्डल का प्रायः ज्ञान वा अनुभव होता हैं आख्यायिका अलंकार द्वारा यह कथन की जाती है जिस समय असुरों का राजा बलि महान् प्रभावशाली यज्ञ करने लगा तब देवताओं का राजा इन्द्र संकुलित और व्यथित हो कर विष्णु भगवान् के समीप जाकर प्रार्थना करने लगा, कि हे पतितपावन परम दयालो परमेश्वर हमारी

इन्द्रपुरी चली जा रही है उसको असुरों का राजा बलि आच्छादित करना चाहता है, हे दीन बन्धो ! हमारी सहायता करो नहीं तो एकसौ यज्ञ पूर्ण हो जाने पर हमको यहां से निकाल देगा और आप का नियम भंग हो जावेगा तदनन्तर विष्णु भगवान् ने उसको धैर्य्य बँधा शान्तिप्रद वचन कहा तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो अभी तुरन्त मैं उसको कश्यप के यहां अवतार धारण कर अवगत कराऊंगा कि तेरा अभी समय नहीं है, और उसको ह्रस्वरूप बावन अंगुल का बन कर पाताल बिठाऊंगा यह श्रवण कर इन्द्र अपने निजस्थान को प्रस्थान कर गया तत्पश्चात् विष्णु बावनावतार धारण कर अभ्यागत रूप से महाराज बलि के यहां पहुंचे। राजा इनका आगमन श्रवण कर आतिथ्य के लिये स्वयं प्रस्थान कर प्रस्थित हुए और अत्यन्त सुन्दर प्रकाश स्वरूप लघुरूप महात्मा के दर्शनकर अत्यन्त आनन्दित हुए अर्थात् हर्ष से आल्हादित होकर प्रेमाश्रु पतित होने लगे और प्रेम भरी वाणी से कहने लगे कि हे भगवन् ! कतिपय अपना अभीष्ट अथवा सेवा जो हो सो मैं करने को तत्पर हूं राजा को उत्कट दाननिमित्त उद्यम अवलोकन कर भगवान् बोले हम को अर्द्धत्रय अथवा तीन पद पृथिवी ही अभिप्रेत अथवा पर्याप्त है विशेष अनावश्यक न गहूंगा राजा प्रसन्न हो देनेको कटिबद्ध हुए तभी शुक्राचार्य उसके गुरु ने कहा इसको दान न दे यह तेरा सर्वस्व लेलेगा बलि ने एक न मान कर दान कर ही दिया और कहा मापो तदनन्तर उस बाल ब्रह्मचारी ने तीन पगों से उस के सर्वस्व को मापकर अर्द्धपाद से उसको माप पाताल पठाया यह तो हुई कथा अब सुनो व्यवस्था जो वर्तमान है रात्रीका अभिमानी देवता राजा बली है, और विद्युत् का अभिमानी देवता इन्द्र है इसी प्रकार सूर्य का अभिमानी देवता विष्णु, यही

सुरेश्वर का परम मित्र है बलि को असुरों का राजा इस अभिप्राय से कथन किया है कि रात्री में ही मनुष्य आसुरी सम्पत्ति से विशेष परिचित हुए प्राणों की गति शीघ्र संचालन करने के निमित्त इन्द्रियों की शिथिलता द्वारा या तो सोते हैं अथवा स्त्रियादि का उपभोग करते हैं योगी प्राणों को निरोध कर अनुभव कर लेता है कि संसार और उसके सब ठाठ सामान सुख सम्पत्ति और विषयभोगो की बासना सब जल तरंगवत् अस्थिर हैं एक दिन अवश्यमेव इस संसार से प्रस्थान करना है और यह सब ठाट बाठ छोड़ जाना है और यह भी कोई नहीं जान सकता कि किस समय मौत का वारन्ट आजावे।

केवल आत्मा ही अजर अमर है यदि नित्यात्मा इन अनित्य पदार्थों के मोह में फंसा रहा और अपनी वास्तविक उन्नति और भलाई के लिए उसने कुछ यत्न न किया तो यह जीवन ही व्यर्थ हुआ एतादृश संस्कार रूपी भानु जब उदय होता है तब अज्ञान को अथवा अहंकार को पाद तले दबा कर नष्ट कर देता है यह तो रहा अध्यात्म दृष्टान्त। अब आधिदैविक सुनो जब अदितिनन्दन आदित्य भगवान भास्कर प्रातःकाल उदय होते हैं तब मानो बालक से परिज्ञात होते हैं और यह दृश्य प्रकृति पर संघटित होने लगता है कि रात्रि के अभिमानी देव से अपने कालक्षेप के लिए स्थान दान लेना चाहते हैं सो ले ही लेते हैं अर्थात् अध ऊर्ध्व विस्तृत किरणों द्वारा बलि के सर्वस्वको नापकर पैरों तले भेज देते हैं यही संक्षेपतः परमेश्वर का निदर्शक दृष्टान्त है, या यों समझो कि विष्णु भगवान् अपने आत्मा सब भूतों में पालन करने वाले ने इस प्रतीयमान् जगत् को जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति पदों द्वारा जब आक्रमण किया उस समय तीन प्रकार से अपने चरणों को स्थापित किया इन ही विष्णु यज्ञ

रूप भगवान् के धूलि युक्त चरणों में यह सब जगत् अन्तर्गत है उसे जानो ॥

(१८)

ॐ त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपाऽदाभ्यः अतो धर्माणि धारयन् ॥

(अदाभ्यः) किसी से भी हिंसा किये जाने के अशक्य (गोपा) सब जगत् के रक्षा करने वाले (विष्णु) भगवान् (अतो) इन पृथिव्यादि में (धर्माणि) अग्निहोत्रादि धर्मों को (धारयन्) धारण करते हुए (त्रीणि पदा) तीनों अवस्थाओं से (विचक्रमे) प्राप्त हुए ॥

व्याख्या—विष्णु भगवान् को कोई भी हिंसा करने में समर्थ नहीं वह किसी लोक या देह के संयोग परिवर्तन द्वारा दुखित नहीं होता क्योंकि वह सब में व्यापक सबका आत्मा है पालन करता है और सर्व का रक्षक ज्ञाता ज्ञान ओंकार स्वरूप ब्रह्म ने पृथ्वी आदि सर्व पदार्थों में अथवा जागृतादि अवस्थाओं में गन्ध काठिन्यतादि गुण धर्मों को धारण करते हुए सर्व को व्याप्त कर दिया अर्थात् दयालु गोपा रक्षक (विष्णु) ने (त्रीणि) तीन (पदा) अवस्था (विचक्रमे) नियत किये हैं और उन में व्याप्त है। उससे (धर्माणि) शुभ कर्मों को (धारयन्) धारण करता हुआ रखता है ॥

(१९)

ॐविष्णोकर्माणि पश्यतःयतो व्रतानि पप्यशे इन्द्रस्य युज्य सखा ॥

(यतः) जिससे (व्रतानि) शुभ कर्मों को (पप्यशे) करते हैं (विष्णोः) विष्णु के (कर्माणि) कर्मों को (पश्यत) देखो (इन्द्रस्य) इन्द्र के (युज्य) योग्य (सखा) मित्र है ॥

व्याख्या—हे जीवो ! व्यापक जगदीश्वर के उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि करने को देखो जिससे ये सब व्रत प्रतिज्ञायें और सृष्टि नेम किये जाते हैं वही इस इन्द्र जीवात्मा के योग्य सच्चा मित्र है अर्थात् आधिदैविक में परमेश्वर जीवों को यह कहते हैं कि हे जीवो तुम विष्णु सूर्य के आकर्षण विकर्षण द्वारा उष्ण प्रकाशादि प्रदात्रि शक्ति से चक्षुरादि इन्द्रिय अपने २ व्यापार में प्रवृत होती हैं उसके मित्र सूर्य भगवान् का प्रातःकाल दर्शन करो और उनके अनन्त उपकारों को अवलोकन कर तदनुसार तुम भी बरतो ॥

(२०)

ऊँतद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्तिः सूरयः दिवीव चक्षुराततम् ।

(सूरयः) विद्वान् जन (विष्णोः) विष्णु भगवान् के (तत्) उस (परमं पदं) उत्कृष्ट स्थान को (आततं) फैले हुए (दिवि इव) प्रकाश के समान अर्थात् प्रकाश के सदृश (चक्षु) आंखों से (सदा) सदैव (पश्यन्ति) देखते हैं ज्ञानी जन विष्णु भगवान् के परम पद को उसी प्रकार ज्ञान दृष्टि से देखते हैं जैसे आकाश को चक्षु ॥

(२१)

ऊँतद्विप्रांशो विपन्यवो जागृवान्स समिन्धते विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥

(विपन्यवः) निष्काम (जागृवान्सः) अप्रमत्त (विप्रांश) ब्राह्मण लोग (समिन्धते) बताते हैं (तत्) वह (यत्) जो (परमं) सर्वोच्च (पदं) स्थान (विष्णोः) निष्काम अप्रमत्त ब्राह्मण लोग उस स्वरूप को उपासते हैं जो विष्णु का परमपद है अर्थात् विष्णु भगवान् का जो परमपद है उसको विशेष करके

स्तुति करने वाले प्रमाद रहित विद्वान् प्रकाश करते हैं ऋग्वेद १, २, ७ ॥

इन मन्त्रों का अभिप्राय विष्णु भगवान् के समर्थन में तात्पर्य है 'विसलृ व्याप्तौ' इस धातु से नुप्रत्यय होकर विष्णु शब्द सिद्ध हुआ है 'वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् सविष्णुः' चर अचर रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है निघन्टु में सूर्य का नाम भी विष्णु है प्राचीन सभ्यता से युक्त पुरुष सूर्य के अधिष्ठान् देवता को समुद्र अर्थात् आकाश में शयन करते हुए नाभिकमल सहस्रांशु कमल सुशोभित तदुपरि सिंहासनारुढ चतुर्मुख ब्रह्मा-लक्ष्मी चरणसेवित इत्यादि लक्षण विशिष्ट अर्थात् उपाधि उपहित जान उपासना करते थे तात्पर्य यह है कि विष्णु निराकार सर्व शक्तिमान् सूर्य का आत्मा आकाश मण्डल में सुशोभित अनन्त शेष का पर्यंक बनाकर विराजमान् हैं अपने किरणों द्वारा समष्टि वायु के अभिमानी पितामह चतुर्मुख ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं। तदनन्तर समष्टि भौतिकाग्नि और विद्युत के अभिमानी देव महादेव ब्रह्मा के मस्तिष्कसे उत्पन्न होकर कैलाश पर्यन्त शोभित होते हैं ये तीनों देव वास्तव में एक ही रूप है भेद केवल उपाधि का है उपाधि माया शक्ति अर्थात् लक्ष्मी का परिणाम और चेतन का विवर्त है उस विष्णु भगवान् से अद्भुत रचनारूपी कर्मो को अपने आपे से अभेद देखते हुए सर्व में सबको विष्णु रूप ही जानो जैसा कि वेद में लिखा है—

ऊँअतोदेवा अवन्तुनो यतोविष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्या सप्तधामभिः

यहां से आगे—

आत्मैव देवता सर्वाः यो देवानां नामधाएकेव भवति।

आत्मा ही सारे देवता हैं अपना आत्मा ही सर्व नामों के

धारण करने वाला है इत्यादि श्रुति स्मृतियों के अनुसार हमको देवता आकाश सहित सप्त धामों से रक्षा करें और जहां से संचालन शक्ति द्वारा जगत् को विष्णु ने व्याप्त किया है वह विष्णु भगवान् सर्व शक्तियों सहित हमारी रक्षा करें।

विष्णों रराट मसि। हे विष्णों तुम ही इस संसार के मस्तक हो (**विष्णोसनपत्रेस्थ**) हे विष्णों तुम ही सबके ग्रहण करने वाले हो—

विष्णो स्यूरसि हे विष्णो तुम ही सुख स्वरूप हो।

वैष्णवमसि, वैष्णवेत्वा, तुम ही वैष्णव हो आपको मैं प्राप्त हो जाऊं। यही प्रार्थना विष्णु भगवान् से अनन्य प्रेम द्वारा की जाती है और जब अपना सर्वस्व विष्णु भगवान् को अर्पण वेदानुसार किया जावे यथा :—

आयुर्यज्ञेन कल्पताम्, प्राणो यज्ञेन कल्पताम्, चक्षु र्यज्ञेन कल्पताम्, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्, मनो यज्ञेन कल्पताम्, वाग् यज्ञेन कल्पताम्, आत्मा यज्ञेन कल्पताम्, ब्रह्म यज्ञेन, ज्योति र्यज्ञेन स्व र्यज्ञेन यज्ञो यज्ञेन यज्ञो वै विष्णुः।

इस मन्त्र से यज्ञ विष्णु का नाम है भावार्थ यह है कि विष्णु के लिए आयु प्राण चक्षु श्रोत्र मन वाणी सहित अपने आप को अर्पण करदो वेद रूपी धन ज्योति और अपना सर्व सुख परमात्मा के निमित्त समझो और विष्णु के लिए अपने आप को उसकी प्रेम भक्ति रूपी ज्ञानाग्नि में इस प्रकार डाल दो जिस प्रकार अग्नि में आहुति। पुनः आयु को विष्णु से प्राण को विष्णु से चक्षु विष्णु से श्रोत्र विष्णु से वाग् विष्णु से मन विष्णु से अभेद समझो उसको अपना आप बार २ चिन्तन करो वही वेद और वही स्वयं ज्योति सुख स्वरूप है उस अपने जीवनाधार प्राणपति विष्णु के लिए अपने आपको दे दो और

उसकी इच्छाऽसार चलना आरम्भ कर दो वह स्वयं ही तुम्हारे पास आजावेंगे जिस प्रकार कि एक साधारण पुरुष चक्रवर्ति सम्राट् के दर्शन करना अर्थात् समीप में जाकर मिलना चाहता था और वह सब लोगों को पूछने लगा कि कोई मुझको ऐसी विधि कथन करें कि जिसके द्वारा मैं महाराज के दर्शन कर कृतार्थ हो जाऊं परन्तु उसको कोई तो यह कहने लगा कि महाराजा से तो महान् पुरुष ही मिल सकते हैं तू नहीं मिल सकता और कोई कहता था कि भाई अब कभी महाराज पर्यटन करने निकलें तब उनको देखना परन्तु तेरा देखना तब भी कठिन वरंच असम्भव जैसा प्रतीत होता है, यह श्रवण कर राजभक्त अत्यन्त व्याकुल चित्त से अतीव व्याकुल हो कर बोला कि हे परमेश्वर ! अब मुझको कोई ऐसा गुरु प्राप्त हो जाय जो मुझको राजा के दर्शन करावे तो वह कहे सो ही मैं करूं इतने में एक सन्यासी महात्मा वहां आ निकले और उससे बोले भक्त तू इतना व्याकुल क्यों है वह बोला महाराज मैं तुम्हारी शरण हूं आप जो कुछ आज्ञा करें मैं उसको सच्ची प्रीति और दृढ़ विश्वास पूर्वक करूंगा इतना श्रवण कर महात्मा यह राग अलापने लगे।

एक भरोसा एक बल एक आस विश्वास।
स्वान्ति सलिल गुरु चरण हैं चात्रिक तुलसीदास।
उत्तम और चण्डाल घर जहां दीपक उजियार
तुलसी मते पतंग के सभी जोति इकसार॥
नीच २ सब तर गये सन्त चरण लौलीन।
जाति के अभिमान से डूबे बहुत कुलीन॥
सोना काई ना लगे लोहा घुण नहीं खाय।
बुरा भला जो गुरु भगत् कबहु नरक नहीं जाय॥

मकरी उतरे तार से पुन गह चढत जो तार।
जाका जासो मन रम्यो पहुंचत लगे न बार ॥

यह कह कर महात्मा बोले बच्चा ! तेरे दर्शन की सच्ची प्रीति है और बचन पर विश्वास है तो मैं कहता हूं सोई तूं कर जो गुरु बचन को ही मानते हैं उनका सर्व कार्य मोक्ष पर्यन्त स्वतः सिद्ध होने लगता है। राजा के दुर्ग पर जहां ऊंची पताका और शतघ्नी आदि चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं तात्पर्य यह है कि उससे महात्मा ने कहा कि राजा के दुर्ग की खाई खुद रही है और उनमें बहुत से मजदूर अर्थात् श्रमजीवी काम कर रहे हैं तूं भी उनमें काम करने लग जा और नौकरी कुछ न ले सायं प्रातःकाल अत्यन्त श्रम कर मध्यान्ह में भिक्षा से क्षुधानिवृत्ति कर लेना और चाहे कोई कुछ कहे वेतन कुछ न लेना अपना कर्तव्य समझ राजभक्ति करना यदि हमारे इस बचन के अनुसार तूं करेगा तो राजा तेरे दर्शन करने को स्वयं आवेंगे।

वह भी तुरन्त महात्मा गुरु के बचन पर दृढ़ विश्वास कर श्रमजीवियों में जाकर श्रम करने लगा, करते २ सूर्यास्त समय आन उपस्थित हुआ तब ठेकेदार सर्व श्रमजीवियों को वेतन विभक्त करने लगा तब उसकी भी बारी आई तब उसको भी कहा तैंने आज बहुत अच्छा कार्य किया है यह लो अपना वेतन और चले जाओ अपने घर को वह बोला कि मैं नौकरी कदापि काल नहीं लेने का चाहे प्राण भले ही निकल जाओ, यही मेरे गुरु की आज्ञा है कि राजा की सेवा करना मेरा धर्म और कर्तव्य कर्म है यह कह कर वह भी शयनार्थ गमन कर गया पुनः प्रातः काल आकर अपना कार्य करने लगा, और प्रेम

पूर्वक दिन व्यतीत किया फिर भी उसको बहुतेरा कहा परन्तु उसने वेतन स्वीकार कुछ भी न किया और सबसे विशेष कार्य करता रहा। दिन प्रति दिन उसके निर्लोभ निष्काम कर्म की महिमा सारे नगर के नर नारियों में होने लगी वरंच राज्य सभा में भी एक कर्मचारी ने महाराज से कहा कि महाराज एक ऐसा पुरुष श्रमजीवियों में आकर नौकर हुआ है कि वह कुछ वेतन न लिए सब से विशेष कार्य करता है और भिक्षा से अपना निर्वाह करते हुए उसको दस बारह दिन व्यतीत हो चुके हैं और श्रम अधिष्ठाता उनको कह कर बैठ रहे परन्तु उसने कुछ भी वेतन न लेते हुए बार २ यही कहता है कि राजा की सेवा करना मेरा धर्म है राजा उसकी यह राज भक्ति श्रवण कर तुरन्त ही कर्मचारियों को आज्ञा देते भये चलो हम भी उस पुरुष के दर्शन करें जो निष्काम हमारे निमित्त इतना श्रम करता है निदान राजा राज्य मंत्री सर्व राजकर्मचारी सभासदों सहित उस पुरुष के देखने के लिए आये उनको चल कर आये हुए देख सर्व हाथ जोड़ इतस्त भयभीत खड़े हो गये और शनै २ कहने लगे कि महाराज आज तुम्हें देखने को आये हैं, इतने ही में महाराज पास आकर बोले, कि हम तुम पर बड़े प्रसन्न हुए तुम इच्छा हो सो मांगो हम देने को तत्पर हैं तब तो वह पुरुष अत्यन्त प्रसन्न होकर गुरु के चरणों में ध्यान लगा उनके बचन में निमग्न होकर गुरु का रूप होता हुआ प्रेम में विह्वल होकर बोला कि महाराज अब आपके दर्शन हो गए मुझे तो बहुत काल से आपके दर्शन की अभिलाषा थी बहुतेरा श्रम किया परन्तु अकृत्कार्यता ही रही, और कोई मुझको सदगुरु नहीं मिले थे जो कुछ मिले थे उनमें से कोई तो कहता था कि धन और विद्या से मान होता है उसी को महाराज

दर्शन देते हैं, सो ऐसे तो अब मुझको सब कुछ देने को तत्पर हो रहे हैं ऐसे तो मंत्री आदि किसी सभ्य पुरुष को कदाचित् देने को उद्यत भी न हुए होंगे अब मैं गुरु की शरण को प्राप्त हो कर बड़े महाराज से मिलूंगा और बिना गुरु भक्ति के अतिरिक्त मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है जिनके बचन को मानने से एक पक्ष के अन्तर्गत कहां तो मैं दर्शन करना चाहता था और कहां आप मेरे जैसे अधम के दर्शन के लिये आये आहा क्या ही सद्गुरु का वचन है, मन ने की गत कही न जाय जो कहे पीछे पछताय गुरु के शब्द को जो विश्वास से कर ग्रहण करता है उसकी अपार गति होती है जो उसकी अविध बांधता है वह पीछे पछताता ही रहता है। दोहे:—

गुरु को कीजे दण्डवत् कोटि २ परणाम।
कीट न जाने भृगं को गुरु करले आप समान॥
कबीरा हरि के रूठते गुरु के शरणे जाय।
कहे कबीर गुरु रूठते हरि नहीं होत सहाय॥
गुरु से ज्ञान जो लीजिये शीश दीजिये दान।
बहुतक भौंदु बह गए राखि जीव अभिमान॥
जा का गुरु है आंधरा चेला खरा निरन्ध।
अंधे को अंधा मिला परा काल के फन्द॥
जा का गुरु है गिरही चेला गिरही होय।
कीच २ को धोवते दाग न छूटे कोय॥
झूठे गुरु की पक्ष को तज तन कीजे वार।
पार न पावे शब्द का भरमें बारंबार॥

इत्यादि वचनों के अनुसार राजा के सहित सबके सब गुरु के वचनों पर विश्वास करने लगे और वह पुरुष अपने गुरु को प्राप्त होकर गुरु सहित परमेश्वर स्वरूप हो गया।

(२२)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजात पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥१॥

ऋग्वेद मं० १० सूक्त १२१

(हिरण्य) ज्योति (गर्भ) अन्तर (समवर्तत्) था (अग्रे) आदि में (भूतस्य) सृष्टि का (जातः) साक्षात् (पतिः) स्वामी (आसीत) था (एक) केवल (स) वह (दाधार) रखता है (पृथिवीं) भूमि को (द्यां) आकाश को (उत) और (इमां) इसको (कस्मै) सुख स्वरूप को (देवाय) ईश्वर को (हविषा) भक्ति से (विधेम) पूजें॥

हिरण्यगर्भ परमेश्वर जिसकी सामर्थ्य में ज्योतिमान् लोक हैं आदि से वर्तमान हैं, केवल वही सृष्टि का साक्षात स्वामी है, वह पृथिवी आकाश और इस दृश्यमान जगत् को धारण कर रहा है हमें सुख स्वरूप परमेश्वर को भक्ति से पूजना चाहिए।

व्याख्या—"हिरण्यं वै ज्योति हिरण्यं वै विज्ञानं ज्योति-विज्ञानं स्वरूप यस्य स हिरण्यगर्भ" ज्योति को और विज्ञान को हिरण्य कहते हैं ये हों अन्तर जिसके अथवा ज्ञान स्वरूप और ज्योतियों का ज्योति होने से परमेश्वर का नाम हिरण्य-गर्भ है सो जो हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा सब देवों में महान् जैसा कि भगवान् कृष्ण कहते हैं।

हिरण्यगर्भो देवानां मन्त्राणां प्रणवः स्त्रिबृतः।
अक्षराणामकारोस्मि पदानि छन्दसामहम् ॥

देवों में हिरण्यगर्भ मैं हूं, मंत्रों में ओंकार मैं हूं, अक्षरों में अकार मैं हूं, छन्दों में गायत्री मैं हूं, वह सूत्रात्मा इस प्रपंच की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमाम् था और जो उत्पन्न हो कर भी सब

विकार जात ब्रह्माण्ड का ईश्वर था वह इस विस्तीर्ण पृथिवी और आकाश को धारण करता है ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें। हम उस सुख स्वरूप परमेश्वर की भक्ति नमस्कारों द्वारा करें जो परमेश्वर सब संसार की आदि और अन्त में अनन्त अपार है, जो प्रकाश अन्धकार को अपने स्व स्वरूप में धारण करता है यही एक बड़ा आश्चर्य है कि प्रकाश और अन्धकार एक ही स्थान में किस प्रकार रह सकते हैं, परन्तु वह अनन्त अपार जिसमें एक दो की संकलना अर्थात् कल्पना ही नहीं हो सकती उस अनन्त अपार सुखस्वरूप अपने आपे में हम समा जायं यही भिक्षा या प्रार्थना हम परमेश्वर से सदैव करते रहें, यही परम पिता परमात्मा का सर्व जीवों को अत्यन्त हितकर महान् उपदेश है और यही मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश्य है ॥

(२३)

ॐ यः आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते। प्रशिषं यस्य देवाः यस्य छाया मृतं यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(यः) जो (आत्मदा) ब्रह्मविद्या का दाता अर्थात् आत्म दाता (बलदा) सम्पूर्ण बलदाता (यस्य) जिसको अथवा जिसकी (विश्व) सब लोग (उपासते) मानते हैं अर्थात् उपासना करते हैं (प्रशिषं) आज्ञा को (देवाः) देवता लोग (अस्य) इसका वा इसकी (छाया) कृपा वा शरण (अमृतं) मोक्ष अर्थात् अमर कारक है तद्व्यतिरिक्त मृत्यु मरना (कस्मै) सुख स्वरूप को (देवाय) ईश्वर को (हविषा) भक्ति से (विधेम) पूजें।

व्याख्या—इस मंत्र में परमपिता परमेश्वर को आत्मा के देने वाला कथन लिया है आत्मा क्या पदार्थ और उसकी उपलब्धि किस प्रकार होती है हम **छान्दोग्यो पनिषद की**

आख्यायिका द्वारा सविस्तर वर्णन करते हैं, **एक समय नारद सनत् कुमार के समीप जाकर बोले** कि हे भगवन् ! आप मुझको आत्मा का उपदेश करें यद्यपि मैं आगे भी बहुत कुछ विद्यायें पढ़ा हूं, परन्तु आत्मा से अनभिज्ञ हूं। परम पूज्य जगद् गुरु सनत्कुमार बोले कि जब शिष्य आत्मवेत्ता बनना चाहता हो तो तब गुरु के प्रति जो कुछ जानता हो वह सर्व ही निवेदन करे इस लिये जो कुछ आप जानते हैं सो कथन करें उससे मैं आपको उपदेश करूंगा, वह प्रसिद्ध नारद बोले हे भगवन्! ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद को जानता हूं, पांचवें इतिहास और पुराण तथा उपनिषद् शास्त्रकला कौशलादि गणितविद्या चिन्हों द्वारा वृष्टि आदिका ज्ञान, गाने की विद्या, वाणियों का ज्ञान, यंत्र निर्माण, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, देव-विद्या, निरुक्त, ब्रह्मविद्या, आध्यात्मिकविद्या, भूतविद्या, क्षत्रत्रविद्या, तत्वोंकी विद्या, शस्त्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पों के विषों का ज्ञान तथा उनके उपायों की विद्या, नृत्य गीत वाद्यादि विद्या प्राकृत जनों की विद्या इत्यादि मैं इन सब विद्याओं को जानता हूं।

'सोऽहं भगवो मंत्रविदे वास्मि, नात्म वित्'

हे भगवन् ! वह मैं मंत्र वेत्ता ही हूं आत्मवित् नहीं। **'मे श्रुतं'** मैंने सुना है 'एव' कि **'आत्मविच्छोकं तरति'** आत्मवित् शोक को तरता है, सो हे भगवन् ! **(सोऽहं)** वह मैं **(शोचामि)** शोचता हूं इसलिए शोक युक्त होने से मैं आत्मवित् नहीं।

तं मां भगवान् शोकस्य पारं तारयतु इति

आप मुझ शोकित को पार उतारें यह विनय है सनत् कुमार बोले

'इतवै किञ्चैतद्ध्यगीष्ठा नामै वैतत्'

'वै' निश्चय करके 'इतकिंच' जो कुछ 'एतत्' इस विज्ञान का आप ने 'अध्यगीष्ठा' अध्ययन किया है 'एतद् नामेव' यह सब नाम ही है सुन 'नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदःसामवेदआथर्वण चतुर्थ इतिहास पुराणः पंचमोवेदानांवेद पित्र्योराशिर्दैवो-निधिर्वाको वाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्र-विद्या नक्षत्र विद्या सर्पदेव जनविद्या नामै वैतन्नामो पारववेति" हे नारद निश्चय करके ऋग्वेद यजुर्वेद सामदेव तथा चतुर्थ अथर्ववेद और पंचम इतिहास पुराण उपनिषद् शास्त्र पित्र राशि दैव निधि वाक्यो वाक्य एकायन देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रबिद्या नक्षत्रविद्या और सर्वदेव जनविद्या यह सब नाम ही हैं नाम की उपासना करो वेद में यही लिखा है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्यनाम महद्यशः ॥

उसकी कोई प्रतिमा अथवा मांपक साधन नहीं है परन्तु उसका नाम बड़े यश वाला है जो पुरुष नाम को महान् समझ कर उपासता है वह जहां तक नाम की गति है वहां तक स्वेच्छाचारी हो जाता है, **"योनाम ब्रह्मेत्युपासते"** यह श्रवण कर नारद ने एकान्त में मनन और निदिध्यासन द्वारा नाम को साक्षात् कर अपने परमपूज्य गुरु सनकादिक के समीप पुनः उपस्थित हो कर बोले कि हे भगवन् नाम से भी बड़ा कोई पदार्थ है सनतकुमार बोले कि **हां नाम से भी बड़ी बाणी है**। उक्त सर्व पदार्थ बाणी के अन्तर्गत आजाते हैं और द्यौ लोक पृथिवी लोक वायु लोक आकाश जल तेज देव और मनुष्य पशु और पक्षि तृण बनस्पति हिंसक जीव कीट पतंगादि क्षुद्र जन्तु धर्म और अधर्म सत्यासत्य साधू और असाधु हृदय को प्रिय और अप्रिय इन सब को बाणी ही जितलाती है निश्चय कर जो बाणी न होती तो न धर्म न अधर्म न सत्य न असत्य न अच्छा न बुरा

न हृदय प्रिय न अप्रिय जानाजाता वाणी ही इन सब को विज्ञापित करती है इस लिये हे नारद यहां से आगे तुं वाणी की उपासना कर ।

सयो वाचं ब्रह्मेत्युपासते यावद्वाचो गतं तत्रास्य तथा काम चारो भवति ।।

वह पुरुष जो बाणी को श्रेष्ठ मान कर उस की उपासना करता है वह जहां तक वाणी की गति है वहां तक वह स्वेच्छा-चारी होता है जो बाणी की उपासना करता है दो बार पाठ उक्त अर्थ की दृढ़ता के लिए आया है नारद बोला हे भगवन् बाणी से भी कोई बड़ा है देवऋषि बोले हां बड़ा है नारद बोले आप मेरे प्रति कथन करें सनत्कुमार बोले, "**मनो वाव वाचो भय**" बाणी से मन ही श्रेष्ठ है जैसे मुट्ठी दो आमलों दो बेरों अथवा दो बहेड़ों को अनुभव करती है अर्थात् अपने अन्दर रखती है वैसे ही मन बाणी और नाम इन दोनों को अनुभव करता है कोई पुरुष जब मन से मनन करता है कि मंत्रों का अध्ययन करूं तत्पश्चात् पढ़ता है । कर्मों को पश्चात् करता है पुत्रों और पशुओं की इच्छा करता है पश्चात् यत्न करता है जब पुरुष इस लोक तथा परलोक की इच्छा करता है पश्चात् यत्न करता है ।

मनोह्यात्मा मनोहि लोका मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ।

निश्चय से मन ही आत्मा मन ही लोक और मन ही बड़ा है इसलिये हे नारद मन की उपासना कर ।

स एव यो मनो ब्रह्मेत्युपासते यावन्मनसो गतंतत्रास्य यथा काम चारो भवति ।

वह जो पुरुष मन को ब्रह्म समझ कर उपासना करता है जहां तक मन की गति है वहां तक वह पुरुष कामचारी होता

है नारद बोला हे भगवन् मन से भी कोई बड़ा है ऋषिवर बोले कि हां मन से भी निश्चय करके अधिक है नारद बोले वह भी मेरे लिये कथन करें गुरु बोले **"संकल्पो वाव मनसो भूयान्"** संकल्प ही मन से बड़ा है क्योंकि निश्चय कर जब पुरुष संकल्प करता है तदनन्तर मनन करता है पुनः वाणी से कथन करके उसी वाक्य को नाम द्वारा उच्चारण करता है नाम में मन्त्र एक होते हैं और मन्त्रों में कर्म एक होते हैं निश्चय कर ये जो मनादि संकल्प के आश्रय हैं संकल्प स्वरूप हैं संकल्प में प्रतिष्ठित हैं द्यौ लोक अर्थात् प्रकाश लोक तथा पृथिवी अन्धकार लोक संकल्प वाले हैं वायु और आकाश संकल्प से ही प्रतीत होते हैं जल और तेज संकल्प से जाने जाते हैं इन्हों के संकल्प निमित्त वर्षा संकल्प करती है वृष्टि के सकल्प निमित्त अन्न संकल्प करता है (पैदा होता है) अन्न के संकल्प निमित्त प्राण संकल्प करते हैं प्राण के संकल्प निमित्त मंत्र संकल्प करते हैं मन्त्रों के संकल्प के लिये कर्म संकल्प करते हैं अर्थात् संकल्प पूर्वक कर्म किये जाते हैं कर्मों के संकल्प के निमित्त लोक संकल्प करते हैं लोक के संकल्प निमित्त सब संकल्प करते हैं, वह यह संकल्प है कि उपासना कर।

स यः संकल्प ब्रह्मेत्युपासते यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति।

वह पुरुष जो संकल्प को बड़ा समझ उपासना करता है निश्चय कर वह सार्थ्ययुक्त उत्तम लोकों को प्राप्त होता है दृढ़ संकल्प पुरुष दृढ़ अटल अवस्थाओं को प्राप्त होता है प्रतिष्ठित पुरुष प्रतिष्ठित लोकों को क्लेश रहित होकर सुखी लोकों को प्राप्त होता है और जहां तक संकल्प की गति है वहां तक यह स्वेच्छाचारी होता है नारद बोला हे भगवन्

संकल्प से भी कोई बड़ा है भगवान् सनत् कुमार बोले। हां संकल्प से भी बड़ा है तो हे भगवन्! करुणा वृत्ति कर सो भी मेरे प्रति कथन करें। सनतकुमार बोले—

श्रूयताम् चित्तं वाव संकल्पाद्भूयः।

चित्त ही संकल्प से बड़ा है निश्चयकर जब चिन्तन करता है तदनन्तर संकल्प करता है पश्चात् मनन करता है तब वाणी को प्रेरता है उस वाणी को नाम निमित्तिक प्रेरता है नाम में मंत्र एक होते हैं मंत्रों में कर्म एक होते हैं निश्चय से यह संकल्पादि चित्तके आश्रित हैं चित्त स्वरूप हैं चित्त में ही प्रतिष्ठित हैं इस कारण यद्यपि कोई पुरुष विविध ज्ञाता हो परन्तु स्थिर चित्त न हो तो इसको लोग कहते हैं कि यह नहीं है अर्थात् न होने के बराबर है, यथा—

यद्यपि बहुविध चित्तो भवति नायमस्तीति एनमाहुः
यदयं वेद यद्वान् विद्वान्नेत्थ मचित्तः स्यात्।

यदि यह शास्त्रों का ज्ञान होता तो ऐसा अस्थिर चित न होता,

अथ यद्यल्प चित्तवान् भवति।

और यदि कोई थोड़ा जानने वाला अच्छे चित्त वाला होता है तो

तस्मा एवोत सुश्रुषन्ते।

उस पुरुष का सब सत्कार करते हैं उस सबका चित्तह आश्रय 'चित्तमात्मा' चित्त ही आत्मा और चित्त ही प्रतिष्ठा है। इस कारण हे नारद तू चित्त की उपासना कर जो चित्त को बड़ा समझकर चित्त से उपासना करता है वह पुरुष निश्चय कर दृढ़ अटलता को प्राप्त होता है प्रतिष्ठित होकर प्रतिष्ठित अवस्था वाला होता है और क्लेश रहित सुखी लोकों में प्राप्त होता है।

यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपासते यावच्चित्त स्यगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति

नारद बोला भगवन् कोई चित्त से भी बड़ा है ? सनत-कुमार बोले हां। नारद बोला हे दया सागर सो भी कथन करें। भगवान् सनत् कुमार बोले—

"ध्यानं वाव चित्ता द्भूय" ध्यान चित्त से बड़ा है।

ध्यानं निर्विषयं मनः तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।

पृथिवी ध्यान करती है, अन्तरिक्ष ध्यान करता है, द्यौ लोक ध्यानावस्थित सा प्रतीत होता है, जल ध्यान करते हैं, पर्वत ध्यानावस्थित हैं, देवता मनुष्य ध्यानावस्थित प्रतीत होते हैं इससे मनुष्यों के मध्य जो पुरुष इस लोक में महत्व को प्राप्त होते हैं वेही निश्चय से ध्यान के एक पाद को न्याई हैं

अथ ये ऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्ते,

और जो अल्प हैं वे कलह करने वाले दूसरों के दोषों को देखने वाले और परोक्ष में निन्दा करने वाले होते हैं येही नीच पुरुष हैं—

यथा—

और जो मनुष्यों के प्रभु होते हैं वे निश्चयकर के ध्यान के प्रभाव से ही होते हैं इस लिए हे नारद ध्यान की उपासना कर।

सयोध्यानंब्रह्मेत्युपासते यावत्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति

जो पुरुष ध्यान को ब्रह्म समझ कर उपासना करता है जहां तक ध्यान की गति है वहां तक वह स्वेच्छाचारी होता है, नारद बोला **"भगवोध्यानाद्भूय इति"** ध्यान से भी कोई बड़ा है ? सनत् कुमार बोले "ध्यानाद्भाव भूयो ऽस्तीति" हां

ध्यान से भी बड़ा है—नारद बोला "तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति" आप मेरे प्रति कथन करें "**विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूय इति**" विज्ञान ही ध्यान से बड़ा है क्योंकि निश्चय कर विज्ञान से ही पुरुष वेद इतिहास पुराणादि पूर्वोक्त सब विद्यायें द्यौलोक से क्षुद्र जन्तु पर्यन्त तत्व भी विज्ञान द्वारा ही जाना जाता है धर्माधर्म सत्यासत्य साध्व साधू हृदय प्रिय अप्रिय रस अत्र यह लोक और परलोक इन सबको पुरुष विज्ञान से ही जानता है इस लिये हे नारद विज्ञान की उपासना कर। जो पुरुष विज्ञान को बड़ा समझ कर उपासना करता है वह निश्चय करके ज्ञानवान् होकर ज्ञान वाले लोकों को प्राप्त होता है।

यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति।

नारद बोले हे भगवान् विज्ञान से भी कोई बड़ा है, हाँ हाँ बड़ा है भगवान् वह भी कहो—सनत्कुमार बोले।

बलंवाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह।

निश्चय करके बल विज्ञान से भी बड़ा है क्योंकि—

शतं विज्ञानवता मेको बलवाना कम्पयते।

शतशः विज्ञानी पुरुषों को एक बलवान कम्पायमान् कर देता है, "**सयदा बलि भवति**" वह पुरुष जब बलि होता है (**अथोत्थाता भवति**) तब कार्य करने को उद्यत होता है "**उत्तिष्ठन् परिचिता भवति**" सेवा करने के योग्य होता है सेवा करता हुआ समीपता को पाता है समीपता से द्रष्टा होता है पुनः श्रोता होता है मन्ता होता है बोद्धा होता है करता होता है विज्ञाता होता है।

बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षम् बले नद्यौ र्बले न पर्वता बले न देव मनुष्या बले न पशव वयांसि॥

बल से ही भूलोक अन्तरिक्ष द्यौ लोक पर्वत देव मनुष्य पशु पक्षि तृण बनस्पति हिंसक पशु और कीट पतंग पिपीलिकादि सब जीव जन्तु बल से ही स्थित हैं बल ही सब लोक लोकान्तर स्थित हैं इस लिये हे नारद बल की उपासना कर।

सयो बलं ब्रह्मेत्युपासते यावद्बलस्यगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति ॥

नारद बोला "**भगवो बलाद्भूय इति**" हे भगवान् बल से भी कोई बड़ा है ? हां है भगवान् सो भी कहो सनकादिक बोले '**अन्नं वाव बलाद्भूय**" अन्न ही बल से बड़ा है यद्यपि कोई दस रात्रि अन्न न खाय तो मर जाय अथवा प्रसिद्ध बलिष्ठ होने के कारण न भी मेरे तदपि अदृष्टा अश्रोता अमन्ता अबोद्धा अकर्ता अविज्ञाता अवश्य हो जाता है और जब अन्न की प्राप्ति हो जाती है तब द्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञाता हो जाता है इस लिए हे नारद अन्न की उपासना कर।

योऽन्नं ब्रह्मेत्युपासते यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति ॥

जो अन्न को ब्रह्म समझता है वह निश्चय से अन्न पान वाले लोकों को प्राप्त होता है, नारद बोले अन्न से भी कोई बड़ा है हां **जल अन्न से भी बड़ा है** जब सुवृष्टि होती है तब ही प्रजा सुखी होती है न रोग को न दुःखों को देखता है वह सर्व को निश्चय पूर्वक ब्रह्म ही देखता है इस कारण सर्व प्रकार से सर्व को ही प्राप्त होता है।

स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा
सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादश स्मृतः
शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिः ॥

वह ब्रह्म अथवा ब्रह्मवित् एक होता है अथवा एक प्रकार का है पश्चात् तीन प्रकार का होता है अर्थात् जीव ब्रह्म प्रकृति इन तीनों प्रकार से है इसी प्रकार पांच सात नौ प्रकार से होता है अथवा है और फिर एकादश जाना जाता है अथवा कहलाता है सौ दस एक सहस्र और बीस होता है।

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृति लम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।

आहार के शुद्ध होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है और अन्तःकरण की शुद्धि से अपने आप अपार सुख स्वरूप की स्मृति अटल हो जाती है। स्मृति अटल हो जाने पर हृदय की सर्व ग्रन्थियों का नाश हो जाता है "**तस्मै मृदित कषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमार मारस्तं स्कन्द इत्याचक्षते**" भगवान् सनत्कुमार ने शुद्धान्तः करण उस नारद को अज्ञान रूप अन्धकार से अपार परमात्म तत्व को दर्शाया उस सनत्कुमार को स्कन्द नाम से कथन करते हैं, इस आख्यायिका से विदित हुआ होगा कि नारद बहुविध होने पर भी आत्मा से अनभिज्ञ था तब उक्त मन्त्रानुसार परमात्मा ने गुरु द्वारा आत्मा की प्राप्ति की, यद्यपि आत्मा परमात्मा नित्य प्राप्त है तदपि अज्ञात होने के कारण नित्य प्राप्ति की प्राप्ति ही ज्ञान सर्व शास्त्रकारों ने मानी है इसी लिए वेद में "**यो आत्मदा**" जो परमेश्वर गुरु द्वारा आत्मा के प्राप्ति करने वाला अथवा अपने स्व स्वरूप को प्रकाशित करने वाला है। परमपूज्य भगवान् व्यासजी वेदान्त दर्शन में कथन करते हैं "आत्म शब्दाच्च" आत्म शब्द से पुरुष का ग्रहण है और अनात्म शब्द से पुरुष से अतिरिक्त अनात्म है।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढ़ात्मा न प्रकाशते ।

ये सब भूतों में गुप्तात्मा बिना ईश्वरानुग्रह (ईश कृपा) अर्थात् गुरु वेदान्त वाक्य पर अत्यन्त विश्वास से अतिरिक्त प्रकाशित नहीं होता।

दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सुक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः।

सूक्ष्म से अति सूक्ष्म कुशाग्र बुद्धि द्वारा देखा जाता है उसको अनात्म पदार्थ दृष्टिगत नहीं होता जिस प्रकार पट के तन्तु द्रष्टा को पट की अस्ति ज्ञान नहीं होती उसी प्रकार खांड के खिलौने में खांड देखने वाले को अस्ति अश्वादि की प्रतीती नहीं होती है जिसको देहात्म ज्ञानवत् आत्मा का ज्ञान साक्षात्कार हो गया है उस को सब कुछ आत्मा अपना आपा ही सब कुछ विदित होता है वही अपने आपे को अपार आनन्द स्वरूप जानेगा जैसा कि राजऋषी ब्रह्मवित् महाराज जनक अद्वैत आनन्द में निमग्न होकर कहते हैं मैं अब अपने लिए गन्धों को ग्रहण नहीं करता किन्तु अपना आपा समझ कर सबके लिये करता हूं इस हेतु सर्व गन्ध मेरे ही हैं और मेरे ही आधीन हैं मैं उनके नहीं—जब मैंने अपने लिये रसास्वादों को त्याग दिया तो सर्व के रसास्वाद मेरे ही हो गये।

कारण को वश में कर लेने से कार्य स्वतः सिद्ध वश होता है इस लिये मैंने जब अपने लिये सबका देखना छोड़ दिया तब सर्व रूपतायें मेरी ही बन गईं। अब मैं अपने लिए कुछ नहीं चाहता अर्थात् अपने आत्मा के लिये किसी भी पदार्थ की इच्छा ही नहीं करता किन्तु अपना आपा सर्व को समझ कर ब्रह्म के लिये इच्छा करता हूं तो देखो ये सब इच्छायें मेरे ही में हो गई। अर्थात् मेरे आधीन में ही हो गईं मैं ही मैं हूं उस तू को तो देश काल पात्र नहीं, ब्रह्मर्षि वामदेव अपना अनुभव प्रकाश करते हैं मनुष्य मानते हैं ब्रह्म विद्या से सब कुछ हो सकते हैं।

असम्भव शब्द मूर्खों के कोष में होता है उसे निकाल दो एक कहता है ब्रह्म क्या था और क्या ब्रह्म ने विदित कर सब कुछ हो गया ब्रह्मर्षि कहते हैं इसके पूर्व ब्रह्म ही था और है उसने अपने को मैं ही ब्रह्म हूं ऐसा जाना तदनन्तर सर्व कुछ हो गया तत्पश्चात् वह जो देवताओं और अविद्या उसकी दूर हुई और जाना कि मैं ही ब्रह्म हूं "**अहं ब्रह्मास्मि**" के ढोल बजाता हुआ ब्रह्म बन गया तब ही श्रुति माता ने बल पूर्वक सब पुरुषों को कहा है।

ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।

अर्थ—ब्रह्म के जानने वाला ब्रह्म हो हो जाता है और है भी सही यह महावाक्य यहां से आगे ऋषियों में से जिसका अज्ञान नष्ट हुआ और जान लिया कि मैं ही निश्चय पूर्वक ब्रह्म हूं तब वही ब्रह्म हो गया उसी प्रकार मनुष्यों में से वह यह देखता हुआ बाम देव ऋषि गर्भ से ही बोला कि मैं ही मनु होता भया मैं ही सूर्य यह सब कुछ और मैं ब्रह्म हूं वह यह सब कुछ हो गया जैसा कि निम्न लिखित श्रुतियें प्रकाश करती हैं।

तदाहु यद् ब्रह्म विद्या सर्व भविष्यन्तो मनुष्याः मन्यन्ते किं तद् ब्रह्मो वेद यस्मात्तत् सर्वम् भवदिति ब्रह्मवा इदम ग्रासीत् तदात्मान मेवावेद अहं ब्रह्मास्मीति। तस्मात्तत् सर्वमभवत् तद् योयो देवानां प्रत्य बुद्धयत स एव तद भवत् तथा ऋषिणां तथा मनुष्याणां तध्यैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवम् सूर्य श्चेति तदि दमप्येतर्त्तहि एवं वेद अहंब्रह्मास्मि स इदं सर्व भवति॥

और भी **बहदारण्यकोपनिषद् प्रथमाध्यांय चतुर्थ ब्राह्मण में 'आत्मै वेद मग्रासीत्'** सृष्टि से पूर्व यह सब आत्मा ही था।

पुरुष विध सोऽनु वीक्ष्य नान्य दात्मनो अपश्यत् सो ऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत ॥

उस पुरुषाकार आत्मा ने और आलोचन किया तो अपने से भिन्न कुछ न देख कर मैं ही सर्वात्मा सच्चिदानन्द हूं इस प्रकार कथन किया इसी कारण "**अहंनामा भवत्**" वह अहं नाम वाला हुआ अर्थात् मैं हूं यह नाम होता भया "**तस्मादप्येतत्तर्ह्या मंत्रितो हमय मित्ये वाग्र उक्त्वा थान्यत् नाम (अन्य) प्रब्रूते**" इसी से बुलाया हुआ यह पुरुष भी मैं हूं यह कह कर पश्चात जो इसके अन्य नाम हैं उन को कहता है, '**यदस्य भवति**' जो इस का है—

स इत पूर्वोस्मात्सर्व स्मात् सर्वान् पाप्मनः औषत् तस्मात्पुरुषः औषति ॥

जिस कारण इस सम्पूर्ण प्रपंच से पूर्व उस आत्मा ने सब पापों को दग्ध किया क्योंकि सृष्टि से पूर्व भी शुद्ध और अपाप विद्ध था और अब भी है और होगा ऐसे जो जानता है उसके पाप नाश होते हैं। "**तस्मात्पुरुष**" इस कारण से उस को पुरुष कहते हैं।

औषति हवै शतं योस्मात्पूर्वो वो भवति य एवं वेद।

जो इस प्रपंच से पूर्व पुरुष की भान्ति होने की इच्छा करता हुआ इस आत्मा की शुद्धता को जानता है कि वह मैं ही हूं वह पुरुष ही पाप को दग्ध करके सुखी होता है। वह पुरुष ही पाप को दग्ध "**सो विभेत् तस्मादेकाकी विभेति**" सो डरा इस से ही अकेला डरता है, "**सहायमीक्षां चक्रे**" उसने आलोचन किया, "**यन्मदन्यासित**" कि मेरे से भिन्न कुछ नहीं है, "**कस्मान्नु विभेमीति**" फिर मैं क्यों डरता हूं किस से डरता हूं। "तते वास्य भयं भीयाम" वही इस के लिए "**कस्माद्ध**

(ध्ये) **भेष्यत**" किस से डरे क्योंकि जिस से डरता था वह अपने आप ही निकला अब दूसरा है ही नहीं अब भय कहां अब तो निर्भयानन्द हो गये क्योंकि "**द्वितीया द्वै भयं भवति**' क्योंकि दूसरे के निश्चय से भय होता है दूसरा ही भय अर्थात् जन्म मरण का कारण है तात्पर्य यह है कि द्वैतवादियों को नर्क का दुःख होता है और अद्वैतवादियों को चन्द्रपुर में परमानन्द "**सवै नवै रेमे**" पर वह प्रसन्न नहीं हुआ "**तस्मादेकाकी न रमते**" क्योंकि अकेला प्रसन्न नहीं रहता "**स द्वितीय मैच्छत्**" फिर उस ने अपने से भिन्न दूसरे का संकल्प किया।
"स हैता वानास" वह इतना बड़ा था यथा—

स्त्री प्रमांसौ सम्परिष्वक्तौ।

जितने रमण काल में स्त्री पुरुष एकत्रित हुए होते हैं अर्थात् पौरुष तथा प्रापित शक्ति से मिला हुआ था।

सं इममे वाल्यान् द्वेधा पातयत्।

उसने अपने स्वरूप को दो भागों में विभक्त किया "**ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्**" जिससे पति और पत्नी भाव प्रकट हुआ।

तस्मादिदमर्धं बृगल मिव स्वैति।

इसी कारण सीप के आधे दल की न्याईं पुरुष का शरीर होता है "हस्माह [याज्ञवल्क्य" ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा कि "**तस्मादय माकाशः स्त्रिया पूर्यत**" पुरुष का आकाश रूपी शरीर आधा विवाह के अनन्तर स्त्री से पूर्ण होता है।

एवता सम्भवत्ततो मनुष्याः अजायन्त।

उसका उक्त पत्नी के साथ संग होने से मनुष्य उत्पन्न हुए "**सा हेयमीक्षां चक्रे**" उस स्त्री ने विचारा।
कथंनुआत्मान मेवजनयित्वा स भवति हन्त तिरोधानीति।

किस प्रकार मुझे अपने से ही उत्पन्न करके भोग की इच्छा से प्राप्त होता है इस लिए मैं रूपान्तर से लीन हो जाऊं "सा **गौर्भवति**" तब वह गऊ हो गई "**वृषभइतर**" दूसरा वृषभ अर्थात् साँड बन गया "**तान्स मेवा भवत्**" वह संग को प्राप्त हुए '**ततो गावो अजायते**" तब गऊवें उत्पन्न हुई।

बड़वेतरा भवदश्च वृषभइतरो गर्धभीतरा गर्धभ इतरस्ता ँस मेवा भवत्।

फिर वह घोड़ी बन गई, और दूसरा घोड़ा, वह गधी हो गई और दूसरा गधा बन गया, जब उनका परस्पर सम्बन्ध हुआ।

ततः एक शफ मजायताजेतरा भवद्वस्त इतरोविरतरा मेष इतरस्ता ँ स मेवा भवत्।

तो उनसे घोड़ा गधा तथा खच्चरादि एक खुर वाले उत्पन्न हुए फिर वह बकरी बन गई और दूसरा बकरा वह भेड़ बन गई और दूसरा मींढा बन गया उनका परस्पर संयोग होने से भेड़ बकरी उत्पन्न हुई जैसा "**ततोऽजावयो ऽजायन्त**" इसी प्रकार।

एव मेव यदिदं किंच मिथुन मपि पिपीलिकाभ्य स्तत्सर्व मसृजत।

इसी प्रकार चींटी पर्यन्त जो कुछ चराचर जगत है उस सब को परमेश्वर ने उत्पन्न किया है जब गुरु द्वारा विचार किया।

सो वेदहं वावसृष्टि रस्म्यहम्।

उस परमात्मा ने जाना कि सर्व प्रपंच अर्थात् यह सब का कर्ता मैं ही हूं सब कुछ मेरे से अन्य कोई नहीं है क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् मैंने ही उत्पन्न किया है जैसा कि "**हीद ँ सर्व**

मस क्षीति" तब वह सृष्टि और सृष्टि का कर्ता हो गया यथा **"ततः सृष्टिरभवत्"** इस प्रकार से जो विराट को सृष्टि कर्ता जानता है वह परमात्मा की सृष्टि में प्रसिद्ध चिरँजीवि होकर मोक्ष हो जाता है जैसा कि—

सृष्ट्या॑ हास्यै तस्यां भवति यः एवंवेद ।और श्रुति—
अथेत्यभ्यः मन्थत् समुखाच्च, योनेर्हस्ताभ्यां चाग्निमसृजत् ॥

इसके अनन्तर उस परमात्मा ने प्रकृति को अर्थात् माया ज्ञान को संचालन द्वारा तैजस कारण से अग्नि को उत्पन्न किया इस लिए दोनों बिना लोमों के हैं हस्त और मुख एवं प्रकृति कारणवस्था में अलोमक कोमलकार्य शून्य थी इसलिये प्रकृति में ही संचालन किया गया जो कार्य अवस्था में परिणत हुई, प्रकृति को कहते हैं उसकी पूजा करो २, वह प्रकृति वर्ग का ही कार्यजात् विचार है निश्चय कर यह विराट् आत्मा ही सब देवताओं का स्वरूप है और यह जो कुछ आर्द्ररूप है उसको रसतन्मात्रा जलीय परमाणुओं से उत्पन्न किया जो वह सोम है बस यह सम्पूर्ण प्रपंच अन्न और अन्नाद स्वरूप है सोम अन्नरूप और अग्नी अन्नाद है, यह अग्नी सोमात्मक विराडात्मा की सृष्टि हैं उसने अपने उत्तम भाग से देवताओं को उत्पन्न कर उनको मुक्ति के योग्य किया इस लिए वह अति स्रष्ट कहाता है जो इस प्रकार आत्मा को जानता है वह निश्चय करके अपना आप ही सब कुछ है।

तद्धयेदं तर्ह्या व्याकृतमासीत् तन्नाम रूपाभ्यामेव व्याक्रियता सौ नामाय मिद॑रूप इति,

अर्थ—यह अव्याकृत्त जगत् उत्पत्ति से पूर्व नामरूप से शून्य था फिर उस पुरुष ने यह देवदत्त यह यज्ञदत्त यह शुक्ल

और यह कृष्ण है इस प्रकार जगत् को नाम और रूप से अलंकृत किया जैसाकि इस काल में भी देखा जाता है कि यह पदार्थ इस नाम और इस रूप वाला है—

एव इह प्रविष्ट आनरवाग्रेभ्यो यथा क्षुरःक्षुरधाने वहितः स्यात्,

यह आत्मा नखशिख पर्यन्त शरीर में प्रविष्ट है जैसाकि क्षुर छुरा क्षुरधानः अर्थात् म्यान में रक्खा हुआ होता है—

विश्वम्भरोवा विश्वम्भर कुलाये तं न पश्यन्ति,

और जिस प्रकार अग्नि काष्ठ में होने पर भी दृष्टिगत नहीं होती इसी प्रकार जीवात्मा को गुरु के विना देख नहीं सक्ते, जीवात्मा रूपी नेत्र के विना अनन्त अपार सुख स्वरूप सर्व का अपना आपा कैसे प्रकट हो सकता है।

अकृत्स्नोहि सः प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति,

वह प्राणन क्रिया करता हुआ प्राण नाम वाला होता है वदनवाक् पश्यन् चक्षु शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मनस्तान्य स्यैतानि कर्म नामान्येव" बोलता हुआ वाणी देखता हुआ चक्षु सुनता हुआ श्रोत्र मनन करता हुआ मन होता है सो यह सब उस आत्मा के कर्म नाम अर्थात् गौण नाम हैं।

स योत एकैक मुपास्ते न स वेदा कृत्स्नो ह्येषो अत एकैकेन भवति॥

वह जो इन में से एक एक की उपासना करता है वह उस को नहीं जानता क्योंकि वह एक से पूर्ण नहीं होता इस लिए उचित है कि उक्त विशेषणों में कहे हुए **"आत्मेत्येवोपासीत"** आत्मा की उपासना करे, **"अत्रे ह्येतत् सर्व एकं भवन्ति"** क्योंकि आत्मा में यह सारे कर्म गुण नाम रूप एक हो जाते हैं, **"ततेतत् यदनीयमस्य सर्वस्य इदय आत्मा"** सो प्रत्येक पुरुष को इसी आत्मा की खोज करनी चाहिये **"अनेन ह्येतत् सर्व**

वेद" इसी द्वारा पुरुष को प्रत्येक का ज्ञान होता है—

यथा हवै यदे नानु विन्दे देवं कीर्ति श्लोकं विन्दते यः एवं वेद ॥

जैसे पुरुष खोज करने से खोये हुये पशु आदि को पा लेता है इसी प्रकार प्राण वाणी आदि की खोज से जो पुरुष उस आत्मा को जानता है वह कीर्ति और स्तुति को प्राप्त होता है। **"तदेतत् प्रेय पुत्रात् प्रेय वित्तात्"** वह आत्मा अपना आप पुत्र और वित्तादि से अत्यन्त प्रीतम है **"अन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतरं इदयमात्मा"** अन्य सब से अत्यन्त अपना आत्मा ही सब को प्रिय है अन्य पदार्थों का प्यार केवल एक अपना आपा ही है वही सूर्य में चमकता है, वही द्यौलोक में दमकता है वही चन्द्र तारागण और विद्युत् शक्तियों में लहलहाता हुआ प्रकाशक और सब प्रकाश जगमगाहट् हो रहा है अनन्त अपार शान्तस्वरूप निरुपद्रव एक रस शुद्ध स्वरूप में ही आत्मा सब का प्रियतम अर्थात् सब का अपना आप हूं इस प्रकार अनात्मदृष्टि को परित्याग कर सब कुछ आत्मा ही से प्यार करो **"सऽयोनियमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्"** सो जो इस आत्मा से अन्य पुत्रादिकों को प्रिय मानता है उस के प्रति आत्म वेत्ता का कथन है कि—

प्रियꣳ रोत्स्यतीति ईश्वरो ह तथैवस्यात् ॥

यदि आत्मातिरिक्त पदार्थों को ही तू प्रिय समझता है तो निश्चय अज्ञानी है; अपने प्यारे के लिए रोवेगा, अतएव उचित है कि पुत्रादिकों में प्रियता का अभिमान छोड़ कर आनन्द स्वरूप परमेश्वर ही अपने आपे आत्मा की ही उपासना करें **"आत्मानमेव प्रियमुपासीत"** अपने आप को ही सबसे प्यारा समझ उपासना करे—

स यः आत्मान मेव प्रियमुपासते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति ।।

सो जो आत्मा को प्रिय जानता हुआ अपने सच्चिदानन्द स्वरूप की उपासना करता है उसके लिए कोई अनात्म पदार्थ दुखदाई नहीं होता किन्तु सब कुछ अपना आप ही अनन्त अपार परमानन्द ही विदित होता है **"ओ३म् ओ३म् ओ३म्"** अथ मनुष्य ब्रह्म विद्या द्वारा सब कुछ हो जाते हैं अर्थात् सर्वात्म भाव का जो पुरुष चिन्तन करता है उस ब्रह्म का क्या स्वरूप है और वह किस प्रकार संकल्प करके सर्व रूप हो जाता है और किस प्रकार संकल्प करके सर्वरूप हो जाता है और किस संकल्प द्वारा जगत् को उत्पन्न करके सर्वान्तर्यामी रूप से नियमन करता है। उत्तर—

ब्रह्म वा इदमग्रासीत् तदात्मान मेवावेत् ।

अर्थ—सृष्टि से पूर्व एक मात्र ब्रह्म ही था और वह अपने आप को इस प्रकार से संकल्प करने लगा, अर्थात् यह जानता भया कि **"अहं ब्रह्मास्मीति"** मैं ब्रह्म हूं **"तस्मात्तत् सर्वम् अभवत्** उसी से वह सब कुछ हो गया इसी प्रकार देव ऋषि और मनुष्यों के मध्य जिस २ ने मैं ब्रह्म हूं ऐसा निश्चय कर अपने आपको जाना वही ब्रह्म हो गया इसी प्रकार जब बाम देव ने अपने आपको शुद्ध ब्रह्म जाना तब और ऋषियों के प्रति कहा कि मैं ही मनु और मैं ही सूर्य हुआ अब भी जो इस प्रकार समझता है कि मैं ही ब्रह्म हूं वह सबका आत्मा ही हो जाता है सब उसे प्यार करते हैं जैसा कि वेद भगवान् उपनिषद में प्रकाश करते है।

तदिदमप्येतर्हि यः एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति। तस्य ह न देवाश्च न भूत्या ईशते आत्माहि सं भवति ।

ऐसे पुरुष का ऐश्वर्य दूर करने में देवता भी समर्थ नहीं होते क्यों कि वह इन देवताओं का आत्मा अपना आपा ही हो जाता है "अथ योन्यान् देवता मुपासते" और जो अपने आपे परमात्मा से भिन्न अन्य देवता की उपासना करता है।

अन्यो सावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानां।

वह परमात्मा और देवता मेरे से भिन्न हैं यह समझ अन्य देवता की उपासना करता है और मैं ही सर्व देवताओं का आत्मा शुद्ध ब्रह्म हूं यह नहीं जानता तब वह देवता और इन्द्रियों का पशु है।

यथा हवै वहव : पशवो मनुष्यं भुज्यु।

जैसे बहुत पशु दोहन बाहनादि से एक २ मनुष्य का पालन करते हैं।

एवमेकैक पुरुषो देवान् भुनक्ति।

इसी प्रकार बहु पशु स्थानीय एक २ अज्ञानी पुरुष विषय भोग द्वारा देवों अर्थात् इन्द्रियों का पोषण करते हैं।

एकस्मिन्नेव पशावादीय मानेऽप्रियं भवति।

यदि किसी का एक भी पशु ले लिया जाए तो उसको अप्रिय होता है।

किं बहुषु तस्मादेषां तन्नप्रियम्।

तो क्या बहुत पशु लेने पर वह अप्रिय नहीं होता किन्तु अधिक होता है।

तदे तन्मनुष्या: विदः

इस लिए केवल कर्मी वा पामर पुरुषों के इन्द्रियों को यह प्रिय नहीं कि पुरुष ब्रह्मज्ञानी बने। बस समझ जाओ सैनों के बैन में जैसा कि एक महात्मा कथन करते हैं—

जो कोई समझे सैन में वासे कहिये बैन ।
सैन बैन समझे नहीं वासे कछू कहै न ॥

दृष्टान्त—किसी स्थान में गुरु शिष्य दो महात्मा रहते थे शिष्य उस महात्मा का भिक्षा निमित्त नगर में जाया करता था कि एक दिन एक साहूकार के गृह में भिक्षा करते हुए उस साधू से पिजरस्थ शुक ने अर्थात् एक तोते ने पूछा कि महात्मा जी तुम कहां रहते हो और कुछ मेरी मुक्ति का उपाय भी जानते हो तो कथन करो क्योंकि मैं महादुखी पराधीनता के कारण हो रहा हूं यद्यपि साहूकार अपने कुटुम्ब सहित खानपादि से मेरा महान् सत्कार करता है तदपि वह स्वतन्त्रता कहां है—जब अनन्त अपार खुले हुए आकाश में अपने मित्रों के साथ उड़ता था लहलहाती हुई सुन्दर और कोमल वृक्षों की शाखाओं पर किलोल करता हुआ नाना भांति के फलों का रसास्वाद लेकर परमानन्द उड़ाता था पंखों से वायु को शुद्ध करता था सबसे ऊंचा मेरा आनन्द बन्धन ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया परन्तु निर्दयी पक्षी पकड़ने वाले तथा पालने वाले पामरों को मेरे ऊपर दया कहां हाय, एक तो मेरी स्वतन्त्रता जाती रही जो मुझ को सर्व से प्रिय थीं क्योंकि कहा भी है—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वं मात्मवशं सुखम् ।
एतद् विद्या समासेन लक्षणं सुख दुःखयोः ॥

पराधीनता में सब दुःख ही दुःख है तथा स्वाधीनता में सब सुख ही सुख है यही विद्या से संक्षेप से सुखदुख का लक्षण है, और भी कहा है—

पराधीन सुपनेहु सुख नाहीं ।
करहूं विचार देखो मनमाहीं ॥

कोई समझे वा न समझे परन्तु जिसके लागी सोइ जाने

दूसरा दूसरे की व्यथा क्या जाने परन्तु जब इस पाप का फल भोगना पड़ेगा तब तो पाश बन्धन और पिंजरे में बन्धन करने वाले भी पछतायेंगे और बिलबिलायेंगे चिल्लायेंगे परन्तु अब कैसी हृदय की आंखें नष्ट हो रही है जो मेरे पराधीनता के दुःख को नहीं देखतीं दूसरा दुःख अपनी जाति से और कुटुम्ब से भिन्न होने का भोगना पड़ा इसको भी सब जानते हैं, जिनको कि यह दुख हुआ है महाराज मैं कहा तक अपने दुखों को कहां तक आप से रोऊं सहस्रों संकल्प डाह मार कर हृदय से उठते हैं और मस्तिष्क में खलबली मचाकर नष्ट हो जाते हैं कोई विचार अपने आप छूटने का नहीं मिलता बिना सद्गुरु के, सो अब आप मिल गए हो मैं आप की ही शरण हूं। किसी प्रकार मुझ को इस बन्धन से विमुक्त करो। यह श्रवण कर साधु बोला कि मैं तेरी मुक्ति की विधि कुछ भी नहीं जानता यदि जानता होता तो कह देता, बिना जाने कहने में श्रुति यह दोष कथन करती है "**समूलमिव शुष्यति योऽनृतमभिवदंति**" जो असत्य कहता है वह मूल सहित नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और भी वेद में कहा है, "**सत्य मवति हन्त्यसत्**" सत्य ही रक्षा करता है और असत्य पुरुष का हनन करता है क्योंकि झूठ बोलने वाले का बेड़ा गरक़ "**सत्यमेव जयते नानृतम्**" सत्य की ही जय होती है असत्य की नहीं इस लिये मैं असत्य नहीं कहता परन्तु मेरे जो गुरु हैं वह सब कुछ जानते हैं उन से पूछूंगा तब तुझे बतलाऊंगा। यह श्रवण कर वह तोता बोला कि महाराज अवश्य ही मेरा यह निवेदन उन की सेवा में कह देना वह साधू भिक्षा ले कर अपने गुरु के निकट आया और भिक्षा धर कर नमस्कार की। तदनन्तर उस तोते का समाचार गुरु से निवेदन करने लगा महात्मा सुनते ही लोटपोट हो गये आंख और श्वास को बन्द

कर लिया और चेष्टा शून्य हो कर चुप हो गये शिष्य डर गया और लगा सोचने कि यह समाचार अब गुरु को कदापि न कहूंगा नहीं तो न जाने क्या हो जाय पुनः अपने गुरु को उठा कर सचेत किया। तदनन्तर दूसरे दिन पुनः भिक्षा को गया तब तोते ने फिर वही प्रश्न पूछा तो साधू ने कहा कि बस मित्र तुम्हारे कहने में ऐसा प्रभाव था मैं ने तो कहा ही था कि गुरु जी श्रवण कर मूर्छित हो गये तोते ने तुरन्त ही गुरु की सैन समझ ली और तदनुसार स्वयं बर्ताव कर बन्धन से निकल गया।

निश्चय करके सो यह आत्मा हृदय में है इस लिये आत्मा को हृदय कहते है जो पुरुष परमात्मा को हृदय और मस्तिष्क में निरन्तर विद्यमान मान कर सांसारिक यात्रा करते हैं वह सदा ही उन्नत होते हैं स्वर्ग लोक भोगते हैं—

अथ यः एष सम्प्रसादोऽ स्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति रूप संपद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यत एष आत्मेति ॥

अर्थ—यहां से आगे (यः एष) जो यह (सम्प्रसादः) सब प्रकार प्रसन्नता पूर्वक (अस्माच्छरीरासत्समुत्थाय) इस शरीर से उठकर (परमज्योति रूप संपद्य) परम ज्योति स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो कर (स्वेन रूपेणाभि निष्पद्यते) अपने निज रूप से वर्तमान होता है, "**इति हो वाच**" आचार्य बोले, एष आत्मा यही आत्मा है "**एतदमृतं**" यही अमृत है "**अभयं एतद् ब्रह्मेति**" अभय यही ब्रह्म है, "**हवै**" निश्चय करके,

तस्य एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्य मिति ॥

उस इस ब्रह्म का नाम सत्य है, "**अथ यः आत्मा स सेतु**" और जो आत्मा है वह सेतु हैं जो "**एषां लोकानां असम्भेदाय**

विधृतिः" यह जो इन लोकों के गड़बड़झाले को नियम में रखता है।

नैतं सेतुमहो रात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न धर्मः न अधर्मः।

इस सेतु को दिन और रात नहीं पार कर सकते न जरावस्था न मृत्यु न शोक न धर्म न अधर्म इस सेतु को उलंघन कर सकते हैं सब उरे हो में सेतु को प्राप्त न हो कर चक्र लगाते हैं।

सर्वे पाप्मानो तो निवर्तन्ते अपहत पाप्माह्येष ब्रह्मलोकः।

इस आत्मा से सब पाप निवृत्त हो जाते हैं क्योंकि यह ब्रह्म लोक पाप से रहित है "**तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वा**" इसी कारण निश्चय करके इस सेतु से तरके "**अन्ध सन्ननन्धो भवति**" अन्धा नेत्र वाला हो जाता है अर्थात् अन्धा सर्वज्ञ हो जाता है "**विद्ध सन् न विद्धो भवति**" दुखी पुरुष सुखी हो जाता है अर्थात् वहां जाकर घायल घायल नहीं रहता "**उपतापीसन्नुपतापी भवति**" रोगी अरोगी हो जाता है अर्थात् सर्व तापों से रहित हो जाता है।

तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वापि नक्त महरेव अभिनिष्पद्यते।

निश्चय कर इसी कारण इस सेतु को तर कर रात्रि भी दिन ही हो जाती है '**सकृद् विभातो ह्येष वैष ब्रह्मलोक**" क्योंकि यह ब्रह्मलोक सर्वदा प्रकाश स्वरूप है—

तद्य एवैनं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दति॥

वह जो पुरुष निश्चय करके ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्म लोक को प्राप्त करते हैं "**तेषा मेवै ब्रह्म लोकः**" उन्हीं को यह ब्रह्म लोक प्राप्त होता है "**तेषां सर्वेषु, लोकेषु कामचारो भवति**", उन्हीं का सर्व लोकों में स्वच्छन्द गमन होता है और "**यद यज्ञ इत्या-**

चक्षते ब्रह्मचर्य मेव तत्" जिस को यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है "**यत् सत्रायण मित्या चक्षते ब्रह्मचर्य मेव तत्**" जिस को सत्रायण यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है "**ब्रह्मचर्येण ह्येव सत् आत्मानं स्वाणं विन्दते**" क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही अविनाशी जीव की रक्षा होती है और "**यन्मौनमित्या चक्षते ब्रह्मचर्य मेव तत्**" जिस को मौन कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है "**ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मान मनुविद्य मनुते**" क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही परमात्मा को भले प्रकार जान कर मनन करता है इसी प्रकार अनाशकायन और अरण्यायन यज्ञ कहते हैं क्योंकि "**तदेष ह्यात्मा न नश्यति**" निश्चय करके वह यह आत्मा नष्ट नहीं होता "यं ब्रह्मचर्येणाऽनुविन्दते" जिस को ब्रह्मचर्य से प्राप्त करते हैं यहां तीसरे द्यौ लोक अथवा ब्रह्मलोक में, अर, और ण्यः दो समुद्र हैं अथवा ज्ञान काण्ड और कर्म काण्ड और "एरं मदीशरः" अर्थात् पूर्ण हर्षदायक अमृत का सर है वहां अमृत चूता हुआ अश्वत्थ वृक्ष ऐसी जो प्रभुनिर्मित ज्योतिर्मय ब्रह्मपुरी है उसको ब्रह्मचर्य के बिना कोई नहीं पा सकता यह ब्रह्मपुरी हृदय की नाड़ियों से अच्छादित वे नाड़ियें पिंगल भूरे वर्ण वाली अति सूक्ष्म हैं और श्वेत नीली पीतवर्ण की रक्त वर्ण की ये सब नाड़ियें निश्चय करके यह सूर्य पिंगल शुक्ल नीलपीत लोहित है यह आदित्य जैसे दूर तक फैला हुआ महान् विस्तीर्ण मार्ग समीपस्थ और दूरस्थ इन दोनों ग्रामों को प्राप्त होता है इसी प्रकार सूर्य की ये किरणें इस लोक और परलोक अर्थात् पृथिवी और सूर्य इन दोनों लोकों को प्राप्त होती हैं, वे किरणें आदित्य से निकल कर चारों ओर विस्तीर्ण हो कर इन नाड़ियों में प्रविष्ट होती हैं और इन नाड़ियों में प्रविष्ट हो कर बाहर शरीर में फैलती हैं और पुनः आदित्य में प्रविष्ट होती हैं वह जीवात्मा मन जिस

काल में सुषुप्ति अवस्था द्वारा सम्पूर्ण इन्द्रिय वृत्तियों को अपने में संहार कर लेता है तब भले प्रकार प्रसन्न चित्त हुआ स्वप्न नहीं देखता उस काल में इन नाड़ियों में प्रविष्ट हुआ होता है उस समय कोई पाप उसको स्पर्श नहीं करता क्योंकि तब अपने तेज से सम्पन्न होता है "यत्रेतद स्माच्छरीरा दुत्क्रामति" जिस काल में यह जीव इस शरीर से निकलता है "अथ एतैरेव रश्मिभि रूर्ध्व माक्रमते" तब इन ही रश्मियों द्वारा ऊपर को जाता है। **"स ओमिति वा होद्वामीयते"** वह पुरुष निश्चय करके ओमिति ओं है इस प्रकार ब्रह्म का ध्यान करता हुआ ऊपर को जाता है "स यावत्क्षिप्येन् मनस्ताव दादित्यं गच्छति" जब तक मन का क्षय नहीं होता तब तक वह आदित्य को प्राप्त होता है क्योंकि—

एतद्वै खलुलोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधो विदुषाम्,

निश्चय करके यही ब्रह्मलोक का द्वार विद्वानों के लिये खुला हुआ है और अविद्वानों के लिये बन्द या यों समझो कि हृदय की एक सौ एक नाड़ियें हैं उन नाड़ियों में से एक नाड़ी मूर्द्धा की ओर निकली हुई है उस नाड़ी द्वारा ऊपर को जाता हुआ अमृतत्व को प्राप्त होता है और जो अन्य विविध प्रकार की नाड़ियां हैं वे केवल उत्क्रमण के लिये हैं, इस सूक्ष्म मार्ग के दिखाने वाला होने से जो परमात्मा **आत्मदा बलदा** कहाता है जिसकी सब विश्व इस प्रकार उपासना करता है कि जैसा कि देवासुरों की सभा में प्रजापति ने कहा—

यः आत्मा अपहत पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिधत् सो पिपासः सत्य कामः सत्य संकल्पः सोऽन्वेष्टव्य सविजिज्ञासि-तव्य—

सः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मान मनु विद्ये विजानातीतिह प्रजापतिरुवाच ॥

प्रसिद्ध प्रजापति देवासुर संग्राम वेदी पर खड़े होकर बोले कि हे शिष्यो ! जो परमात्मा पाप से रहित है जरावस्था से रहित है मृत्यु से रहित है शोक रहित और क्षुधा पिपासा रहित है सत्य की कामना वाला और सत्य संकल्प है वही खोजने योग्य और वही जिज्ञासा योग्य है जो उस परमात्मा को खोज कर जानता है वह सब लोकों को और सब कामनाओं को प्राप्त होता है अथवा होते हैं यह सुन कर देवासुरों के कर्ण खड़े हो गये तदनन्तर परस्पर सम्मेलन करने लगे तत्पश्चात् विश्वास कर्तृ समिति द्वारा अपने २ राजाओं से कहने लगे कि परम गुरु जगत् पिता प्रजा पति के कथनाऽसार हम सब राजा और प्रजावर्ग आत्मा को नहीं जानते जो पाप से रहित है पाप उसका नाम है जिस कर्म द्वारा अन्य जीवों को दुःख उत्पन्न हो और अपने को आभासमात्र सुख की प्रतीति हो जो जरा से रहित है जरा जर्जरीभूत अर्थात् जीर्णावस्थाको कहते हैं जो प्रायः तडिताकाश के परमाणु और तृसरेणुओं में भी विरस विदित होती है विमृत्यु अर्थात् मृत्यु से भी रहित है मृत्यु संयोग हुए के वियोग को कहते हैं, और सर्व शोकों से रहित वह आत्मा जैसा कि नारद कहता है "**तरति शोकमात्मवित**" आत्मवित् शोक को तर जाता है, शोक यहां पर यह जैसा महाराज ने सन्देह शक की कि जो मैं ब्रह्म साक्षात्कार गुरु द्वारा धर्म दिवाकर महाराज द्वारा कर सकूंगा वा नहीं, यही शोक करने से रैक्व ऋषि ने महाराज को शूद्र कह दिया नारद पूर्वोक्त विद्याओं द्वारा शोकित था तात्पर्य यह है कि प्राकृत पदार्थों द्वारा जो पुरुष दुःख का अत्यन्ताभाव करना चाहते हैं वह

शोकित हैं और क्षुधा पिपासा से रहित हैं और हम क्षुधा पिपासा सहित ही हैं सत्य कामना वाला और सत्य संकल्प है हम को भी सत्य कामना वाला और सत्य संकल्प वाला होना चाहिए महाराज प्रजापति ने कहा है कि वही खोजने योग्य है उसी को खोजो, तदनन्तर देवताओं में से इन्द्र और असुरों से विरोचन दोनों राजा यद्यपि परस्पर विरोधी भी थे वरंच सार्वभौम स्वराज्य सुख की बृद्धि के लिए गुरु भाई बन कर आत्मा की खोज के लिए प्रजापति के समीप आ उपस्थित हुए गुरु भाव से नमस्कारादि कर समित पाणी बोले कि महाराज आपने जो आत्मा जानने योग्य कहा था कि जिस के जान लेने से सर्वलोकों को प्राप्त हो कर सर्व कामनायें पूर्ण हो जाती हैं हम तुमको पूछते हैं कि आत्मा को कहां खोजें तब प्रजापति बोले कि ३२ वर्ष मेरे वचन को सत्य मान कर यहीं निवास करो उन दोनों ने वैसा ही ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य पूर्वक प्रजापति के समीप निवास किया तब उन दोनों से प्रजापति बोले कि तुम इच्छा करते हो तब वे दोनों बोले कि जो परमात्मा पाप रहित जरावस्था रहित मृत्यु से रहित शोक रहित क्षुधा रहित पिपासा रहित है और सत्य की कामना वाला और सत्य संकल्प है वही ग्रहण करने योग्य और वही जिज्ञासा योग्य है जो उस आत्मा को खोज कर जानते हैं वह सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त होते हैं आपके इस उपदेश के कथनानुसार हम जानते हुए इसी परमात्मा के जानने की इच्छा से हम दोनों ने यहां आप के समीप निवास किया है तदनन्तर गुरु आचार्य कथन करते हैं जैसा कि—

तौह प्रजापतिरुवाच एषोऽक्षणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति होवाचै अदमृत अभयं एतद् ब्रह्मेति ।।

उन दोनों से प्रजापति बोले कि जो यह पुरुष अक्षि में दीखता है यही आत्मा है यही परमात्मा है अमृत अभय ब्रह्म है इसके अनन्तर वे प्रसिद्ध दोनों बोले कि हे भगवन् ! जो यह जलों में और जो यह आदर्श अर्थात् दर्पण में दृष्टि गत होता है यह आत्मा कौन है तब प्रजापति बोले कि—

एषु एतेषु सर्वेषु परिख्यायत एष उर एव ॥

इन सब पदार्थों में परमात्मा भले प्रकार देख पड़ता है परन्तु निश्चय करके वही आत्मा अपहत पाप्मादि गुण विशिष्ट है और प्रजापति पुनः बोले जल पात्र में आत्मा को दोनों देखो यदि उस में भी आत्मा को न जान सको तो मुझ से आकर पूछो अर्थात् कहो वह दोनों जल पात्र में आत्मा को देखने लगे फिर उन दोनों से प्रजापति बोले कि इस में क्या देखते हो वे दोनों बोले कि भगवान् हम दोनों सिर से लेकर पैर तक यह सब ही आत्मा का प्रतिरूप देखते हैं। तदनन्तर उन दोनों से प्रजापति बोले कि तुम दोनों विमल वस्त्रों से भले प्रकार अलंकृत होकर जलपात्र में आत्मा को देखो वह दोनों विमल उत्तम वस्त्रों से अलंकृत होकर जलपात्र में देखने लगे, उन दोनों से प्रजापति बोले कि क्या देखते हो इन्द्र और विरोचन बोले कि जैसा यह शरीर साफ सुथरा प्रथम था वैसा ही अब देखते हैं हे भगवन् ! जैसे हम दोनों विमल उत्तम वस्त्रों से भले प्रकार अलंकृत है इसी प्रकार हम दोनों दर्पण में भी अलंकृत देख पड़ते हैं तब प्रजापति बोले कि यही आत्मा है यही अमृत यही अभय है और यही ब्रह्म है। यह सुन कर वे दोनों शान्त हृदय वहां से चले गये।

प्रजापति उन दोनों को जाता हुआ देख बोले कि आत्मा को न पा कर न जान कर जाते हैं जो देवता अथवा असुर इस

ज्ञान वाले होंगे वे अवश्य नष्ट हो जावेंगे अब वह प्रसिद्ध शान्त हृदय विरोचन निश्चय करके असुरों के निकट पहुंचा और असुर भी अपने महाराज को आया हुआ देख महान् हर्ष से हर्षित हुये। पुनः उन्होंने महती सभा कर महाराज से पूछा कि हे राजेश्वर आपने जो ३२ वर्ष पर्यन्त आत्मा का अन्वेषण किया और गुरु प्रजापति की महती सेवा की उसका फल जो आत्म ज्ञान है वह दया कर हमारे प्रति कथन करें तब विरोचन ने उन असुरों के प्रति इस ज्ञान को कहा कि इस लोक में शरीर ही पूजनीय और शरीर ही सेवनीय है, यहां शरीर को ही पूजता हुआ शरीर का ही सेवन करता हुआ लोक और परलोक दोनों को प्राप्त होता है, प्रजापति ने यही हम को उपदेश किया कि जो यह पुरुष अक्षि में दीखता है यही आत्मा है यही अमृत अभय ब्रह्म है, इसके अनन्तर हम से कहा कि जो यह जलों में और जो यह दर्पण में अभिगत होता है वह आत्मा कौन है तब प्रजापति बोले कि इन सब में यही अपना शरीर आत्मा भले प्रकार देख पड़ता है हम ने भी प्रजापति के उक्तानुसार जलपात्र में अपने आत्मा को देखा प्रजापति बोले इसमें क्या देखते हो पुनः हम बोले कि हे भगवन्! सिर से पैर तक यह सभी आत्मा का प्रतिबिम्ब देखते हैं फिर उन्होंने कहा कि वस्त्रों से भले प्रकार अलंकृत हो कर देखो तब हमने उक्तानुसार ही किया तब प्रजापति बोले क्या देखते हो हमने कहा हे भगवन् जैसे हम दोनों विमल उत्तम वस्त्रों से भले प्रकार अलंकृत है इसीं प्रकार दर्पणमें देख पड़ते हैं। प्रजापति बोले कि यही आत्मा है यही अमृत यही अभय ब्रह्म है अब आनन्द में खाओ पीओ मौज उड़ाओ खूब विद्या पढो और उस से उपभोग करो शरीर ही आत्मा है इस से अतिरिक्त आत्मा कोई नहीं जैसा कि लिखा है—

तच्चैतन्य विशिष्ट देह एव आत्मा ।
देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात् ॥

अर्थ—इस शरीर में चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न हो कर उन्ही के वियोग के साथ ही नष्ट हो जाता है इसलिए वह चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है देह से अतिरिक्त आत्मा में कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि मरे पीछे कोई भी जीव प्रत्यक्ष नहीं होता हम एक प्रत्यक्ष को ही मानते हैं। क्योंकि प्रत्यक्ष के बिना अनुमानादि होते ही नहीं इस लिये मुख्य प्रत्यक्ष के सन्मुख अनुमानादि गौण होने से उनका ग्रहण नहीं करते वरंच सुन्दर स्त्रयादि के आलिंगन से आनन्द का करना पुरुषार्थ का फल है यही बृहस्पति कहते हैं।

यावज्जीवेत् सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः ॥
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

कोई मनुष्यादि प्राणि मृत्यु से अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है इस लिए जब तक शरीर में जीव रहे तब तक सुख से रहो जो कोई तुम से यह कहे कि धर्माचरण से कष्ट होता है जो धर्म को छोड़े तो पुनर्जन्म में बड़ा दुःख पावे उसको तुम यह उत्तर दो अरे भोले भाई जो मरे पश्चात् शरीर भस्म हो जाता है कि जिसने कि खाया पिया है वह पुनः संसार में न आवेगा इस लिए जैसे हो सके वैसे आनन्द में रहो लोक में नीति से चलो ऐश्वर्य को बढावो और उससे इच्छित भोग करो यही लोक समझो परलोक कुछ नहीं देखो पृथ्वी जल अग्नि वायु इन चार भूतों के परिणाम से यह शरीर बना है इसमें इनके योग संघर्षण से चैतन्य उत्पन्न होता है, जैसे मादक द्रव्य खाने पीने से मद (नशा) उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार बादलों से टकरा कर विद्युत, हस्तों के ताड़न से शब्दादि

उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार उनके वियोग पर नष्ट होकर उन्हीं में लय हो जाते हैं इसी प्रकार जीव के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ आप भी नष्ट हो जाता है। फिर किसको पाप पुण्य का फल होगा और

महामोह भूपसुअनूप देख हंसेअति अहो जड़बुद्धि सबलोक बौराने हैं। लोक परलोक माहीं भोक्ता अनूप सुख देहते विभिन्न आत्म बखाने हैं।

आकाश तरु फूलन विलास फल आस करे।
कहो नभ फल हू को स्वाद किन जाने हैं॥
भये खोटे पण्डित पंखड सु चलाये जग।
बोल सुकपोल लोग सगरे ठगाने हैं॥

अर्थ—सगरी असुर सभा इस व्याख्यान से हर्षित होकर राजा की ओर सहानुभूति का परिचय देती हुई प्रतीत होने लगी फिर महाराज ने कहा अहो बड़े आश्चर्य की बात है जड़ बुद्धि सभी लोग उन्मत्त हो गये कि जो देह ते भिन्न मूढात्मा कथन करते हैं और इस जन्म में किये हुए शुभ कर्मों का फल परलोक में सुख चाहते हैं यह इच्छा इनकी आकाश वृक्ष के फूलों की शय्या पर निवास कर आशा करते हैं। उस आकाश फल खाने के समान है कहो इनको स्वाद कैसे आवेगा पढ़ लिख कर पंडितों ने लोगों के ठगने के लिए जो वस्तु नहीं है उसको भी वेद के द्वारा सत्य कहा। सांख्य में लिखा है—

प्रमाणा भावान्नतत् सिद्धिः सम्बन्धाभावान्नानुमानम्।

व्याप्ति सम्बन्ध न होने स अनुमान भी नहीं हो सकता पुनः प्रत्यक्षानुमान् के न होने से शब्द प्रमाणादि भी नहीं घट सकते इस कारण ईश्वर की सिद्धी नहीं हो सकती सब जगत्

की उत्पत्ति स्वभाव से है जो २ स्वाभाविक गुण हैं उस २ से द्रव्य संयुक्त हो कर सब पदार्थ बनते हैं कोई जगत् का कर्ता नहीं जैसा कि कहा है।

अग्नि रुष्णो जलं शीतं, शीत स्पर्श तथाऽनिलः।
केनेदं चित्रितंतस्मात् स्वभावात्तद् व्यवस्थितिः॥
न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फल दायकाः॥

न कोई स्वर्ग न कोई नर्क और न कोई परलोक में जाने वाला आत्मा है और न वर्णाश्रम की क्रिया फल दायक है।

पशूश्चेन्निहितः स्वर्ग ज्योतिष्टोमेगमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते॥

जो यज्ञ में ईश्वर निमित्त पशु को मार होम करते हैं और उस होम के करने से वह स्वर्ग को जाता तो यजमान अपने पिता आदि को मार स्वर्ग में क्यों नहीं भेजता।

मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं श्चह्यै तृप्ति कारणं।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पादेय कल्पनम्॥

जो मरे हुए जीवों का श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता तो परदेश में जाने वाले मार्ग निर्वाहार्थ अन्न वस्त्र और धनादि को क्यों ले जाते हैं क्योंमि जैसे मृतक के नाम से अर्पण किया हुआ पदार्थ स्वर्ग में पहुंचता है तो परदेश में जाने वालों के लिए उनके सम्बन्धी भी घर में उनके नाम से अर्पण करके देशान्तर में पहुंचा देवें जो यह नही पहुंचता तो दूसरे जन्म में और स्वर्ग में क्यों कर पहुंच सकता है इससे यह विदित होता है कि—

ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणै र्विहितस्तुयः।
मृतानां प्रेत कर्माणि तत्व न्यद्विद्यते क्वचित्॥

इस यिए यह सब ब्राह्मणों ने अपनी जीविका का उपाय किया है जो दश गात्रादि मृतक क्रिया करते हैं यह सब उनकी जीविका की लीला है—

स्वर्ग स्थिता यदा तृप्ति गच्छेयुस्तत्र दानतः ।
प्रसादस्यो पस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥

जो मर्त्य लोक में दान करने से स्वर्गवासी तृप्त होते हैं तो नीचे देने से घर के ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता ।

यदि गच्छेत्परंलोकं देहादेश विनिर्गतः ।
कस्माद्भ्रू यो नचायाति बन्धुस्नेह समाकुलः॥

जो लोग कहते हैं कि मृत्यु समय जीव निकल के परलोक को जाता है यह बात मिथ्या है जो ऐसा होता तो कुटुम्ब के मोह से बद्ध होकर पुनः घर में क्यों नहीं आ जाता, इस हेतु से यह शरीर ही आत्मा है, इसको स्वस्थ और स्वच्छ रक्खो जिस प्रकार होसके संसार का आनन्द भोगो इत्यादि आसुरी विचारानुसार आजकल भी यहां असुरों का सम्प्रदाय चला आरहा है जो दान न देते हुए या परलोक विषयक श्रद्धा न करते हुए या यज्ञ न करते हुए को खेद से सृष्ट पुरुष कहते हैं कि यह असुर हैं। क्योंकि यह ज्ञान असुरों को है ऐसे लोग ही उक्त कर्म नहीं करते वह मृत शरीर को ही गन्धमाला वस्त्रों और भूषणों से अलंकृत् करते हैं निश्चय करके इससे ही इस लोक को जीत लेवेंगे ऐसा मानते हैं।

जहां खान न पान न ती सुख हैं वह मोक्ष कहो कतआवत कामा
परलोक नहीं सुख होय कहां उलटे सुत नार तजावत धामा ॥
जगवंचन के हित व्यौत रची जन धूरत वेदधरे तिहिं नामा ।
सरधा सुनयों पथवेद तजे सुपखण्डन के वश हो गई वामा ॥

इत्यादि विचारों के अनुसार विरोचन के अनुयायी असुर नास्तिक हो गये और इसके अनन्तर प्रसिद्ध इन्द्र ने विचार करते हुए देवों को प्राप्त न होकर इस भय को देखा कि निश्चय कर जैसे इस शरीर के भले प्रकार अलंकृत् होने पर यह छाया पुरुष भी अच्छा अलंकृत होता है और अच्छे वस्त्रधारी होने से छाया भी सुभूषित होती है। इस शरीर का परिष्कार होने से छाया भी परिष्कृत होती है इसी प्रकार काना होने से छाया पुरुष भी काणा सा होता है इस शरीर के अन्धे होने पर यह भी अन्धा होता है इस शरीर के छिन्न भिन्न होने पर छाया-पुरुष भी छिन्न भिन्न होता है इस शरीर के नष्ट होने पर यह भी नष्ट होता है इस कारण यहां पर मैं कल्याण नहीं देखता तब वह इन्द्र हाथ में समिधा लेकर पुनः प्रजापति के समीप आये उस इन्द्र को देख प्रजापति बोले हे मघवन विरोचन के साथ शान्त हृदय होकर आप जो चले गये थे पुनः किस इच्छा से आये हैं यह प्रसिद्ध इन्द्र बोला कि हे भगवन्! निश्चय करके जैसे इस शरीर के भले प्रकार अलंकृत होने पर शुद्ध वस्त्रों के धारण करने पर अन्धे होने पर काणा होने पर छिन्न भिन्न होने पर नाश होने पर यह छायापुरुष भी नाश हो जाता है इस कारण मैं यहां पर कल्याण नहीं देखता हूं। प्रजापति बोले हे इन्द्र यह आत्मा ऐसा ही है जैसा आप कथन करते हैं इसी आत्मा का तो आप से फिर व्याख्यान करूंगा आप ३२ वर्ष मेरे समीप, पुनः वास करें वह प्रसिद्ध इन्द्र प्रजापति के निकट ३२ वर्ष पुनः बास करने लगा। उस इन्द्र से प्रसिद्ध प्रजापति बोले कि यह जो स्वप्न में अपनी महिमा का अनुभव करता हुआ विचरता है यही आत्मा है इतना कथन करके फिर बोले यही अमृत है यही अभय है और यही ब्रह्म है जैसा कि

यः एष स्वप्ने महियानश्चरत्येष आत्मेति होवाचै तद्मृत मभयमेतत् ब्रह्मेति ।

अर्थ—(एषः) यह (यः) जो (स्वप्ने) स्वप्नमें (महीयानः) अपनी महिमा का अनुभव करता हुआ (चरति) विचरता है (एषआत्मेति) यही आत्मा है इतना कथन कर (हउवाच) फिर बोले कि (एतत्) यही (अमृतं) अमृत है (अभय) अभय स्वरूप है (एतत्ब्रह्मेति) यही ब्रह्म है। यह गुरु उपदेश श्रवण कर वह प्रसिद्ध इन्द्र शान्त हृदय होकर चला आया परन्तु उस इन्द्र ने देवों को प्राप्त न होकर ही इस भय को देखा कि यद्यपि उस स्वप्नावस्था में यह शरीर अन्ध होता है तथापि यह आत्मा अन्धा नहीं होता यदि यह शरीर काणा होता है तो वह आत्मा काणा नहीं होता इसके दोष से यह आत्मा कदापि दूषित नहीं होता इस शरीर के वध से काणा होने से वह आत्मा काणा नहीं होता परन्तु इस आत्मा को मानों कोई मार रहे हैं मानो कोई भगा रहे हैं यह मानो अप्रिय देखता और रोता हुआ सभी प्रतीत होता है इस विषय में भी मैं कल्याण को नहीं देखता हूं यह विचार हाथ में समिधा लेकर फिर प्रजापति के निकट आये उसको प्रजापति बोले कि हे इन्द्र !

यच्छान्त हृदय प्राव्रजी किमिच्छन् पुनरागमेति

जो आप शान्त हृदय होकर चले गये थे अब फिर किस इच्छा से आये हो वह इन्द्र बोला कि हे भगवन् ! यद्यपि वह यह शरीर अन्धा होता है परन्तु वह आत्मा अनन्ध होता है यदि शरीर का कोई अंग भंग हो जाता है पर वह आत्मा पूर्ण होता है इस शरीर के दोष से यह आत्मा कदापि दूषित नहीं होता इसी प्रकार शरीर के बध से काणा होने से वह आत्मा काणा नहीं होता परन्तु इस आत्मा को मानो कोई मार रहे हैं

मानो कोई भगा रहे हैं यह मानो अप्रिय देखता और रोता हुआ सा भी प्रतीत होता है इसमें मैं कोई फल नहीं देखता तब प्रजापति गुरु बोले कि से इन्द्र ! यह आत्मा ऐसा ही है फिर बोले कि हे इन्द्र ऐसी आत्मा का तो तेरे प्रति फिर व्याख्यान करूंगा आप ३२ वर्ष मेरे निकट और वास करें वह इन्द्र ३२ वर्ष उनके समीप और बसे तदन्तर उससे प्रजापति बोले

तद्यत्रैतत् सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतद मृतमभय मेतत् ब्रह्मेति।

(तत) वह (एतत्) यह आत्मा (यत्र) जिस अवस्था में (सुप्तः) सोया हुआ (समस्तः) अपने स्वरूप में स्थित (सम्प्रसन्नः) भले प्रकार आनन्द का अनुभव करता हुआ (स्वप्नं न विजानाति) स्वप्न को नहीं जानता (एष आत्मेति) यही आत्मा है (उवाच) पुनः प्रजापति बोले (एतदमृतम) यही अमृत (अभयं) भय रहित (एतद् ब्रह्मेति) यही ब्रह्म है यह सुन वह प्रसिद्ध इन्द्र शान्त हृदय हो चला आया। पर उसने देवताओं को प्राप्त होने से पूर्व ही इस भय को देखा कि निश्चय करके यह सुषुप्तात्मा यह मैं हूं इस प्रकार सम्प्रति अपने को नहीं जानता नाहीं इन भूतों को जानता है किन्तु विनाश को ही प्राप्त हुए की भान्ति होता है इस सिद्धान्त में भी कोई अच्छा फल नहीं देखता इस प्रकार सोच फिर लौट आया और वह हाथ में समिधा ले कर फिर प्रजापति के समीप आये उनको प्रजापति बोले कि हे इन्द्र ! जो तुम शान्त हृदय होकर यहां से चले गये थे फिर किस इच्छा से पुनः आये हैं इन्द्र बोले हे भगवन् ! निश्चय करके—

अय महमस्मि एवं सम्प्रति आत्मानं नहि जानाति नो इमानि भूतानि अस्मीति।

यह मैं हूं इस प्रकार सम्प्रति अपने को नहीं जानता और नाहीं इन भूतों को जानता है "**विनाश मेवा पीतः भवति**" विनाश को ही प्राप्त होता है यह देखता हूं इसमें भी मैं कोई कल्याण नहीं देखता इस प्रकार सोच कर फिर लौट आया हूं फिर अत्यन्त निपुण सुयोग्य अपने प्रिय शिष्य इन्द्र से जगद्गुरु प्रजापति बोले कि हे इन्द्र ! यह आत्मा ऐसी ही है फिर प्रजापति ने कहा कि आपके प्रति इसका ही फिर व्याख्यान करूंगा क्योंकि इस आत्मज्ञान से भिन्न और कोई पुरुषार्थ नहीं है पांच वर्ष मेरे समीप और वास कर वह इन्द्र ५ वर्ष और वास करता रहा यह सब मिल कर "**एक शतंसपेदुः**" एक सो वर्ष हुए वह सब जो शिष्ट पुरुष हैं ऐसा ही कहते हैं कि निश्चय करके ।

एकशतं वर्षाणि मघवन् प्रजापतौ ब्रह्मचर्य मुवास ।

एक सौ वर्ष इन्द्र ने प्रजापति के निकट ब्रह्मचर्य पूर्वक निवास किया तब उस इन्द्र से प्रजापति बोले कि ।

मघवन् मर्त्यंवा इदं शरीरं नात्तं मृत्युना तदस्य मृतस्या शरीरस्यात्मनोऽधिष्टान मान्त्रो वैसः शरीर प्रिया प्रियाभ्यां नवै वस शरीरस्य सतः प्रिया प्रिययो रपहति रस्त्य शरीरं वावा सन्तं न प्रिया प्रिये स्पृशतः ।

हे इन्द्र यह शरीर निश्चय करके (मर्त्यं) मरण धर्मा है, (मृत्युना आत्तं) मृत्यु से ग्रसा हुआ है जिस प्रकर बकरी का बच्चा शेर के मुख में होता है, उसी प्रकार यह शरीर मृत्यु के मुख में है (तदस्या मृतस्य) यह शरीर इस अविनाशी (अशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानं) अशरीरी आत्मा का अधिष्ठान है (वै) निश्चय करके (स शरीरात्मा प्रिया प्रियाभ्यां) प्रिय और अप्रिय से (अस्तः) ग्रसित है (वै) निश्चय करके जब तक यह

(स शरीरस्य सतः) सशरीर है तब तक इसके (प्रिया प्रिययोः) प्रिय और अप्रिय का (अपहति) नाश (न अस्ति) नहीं होता (अशरीरं सन्तं) अशरीरि आत्मा को (प्रिया प्रिये) प्रिय और अप्रिय (वाव) निश्चय करके (नस्पृशतः) स्पर्श नहीं कर सकते।

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत् स्तनपित्नुर शरीराण्येतानि।

वायु अशरीर है, मेघ विद्युत तथा गर्जन ये सब शरीर रहित हैं।

तद्यथैतान्य मुष्मा दाकाशात्समुत्थाय परं ज्योति रूप संपद्य स्वेन रूपेणाभि निष्पद्यन्ते।

वह जैसे उस आकाश से उठ कर परम ज्योति स्व कारण को प्राप्त हो निज २ रूप से अपने कारण में स्थित होते हैं।

एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति रूप संपद्यस्वेन रूपेणाभि निष्पद्यते सउत्तम पुरुषः स तत्र पर्य्येति जक्षन् पीड़न् क्रीड़न् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोयजनं स्मरन्तिदं शरीरं स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एव मेवायमस्मिन्छरीरे प्राणो युक्तः।

(एव मेव) वैसे ही (एष) यह (आत्मा) (सम्प्रसाद) सम्यक प्रकार प्रसन्नता पूर्वक (अस्मात्शरीरात् समुत्थाय) इस शरीर से उठ कर (परं ज्योति रूप संपद्य) परं ज्योति ब्रह्म को प्राप्त हो कर (स्वेनरूपेण) अपने निज रूप से (अभि निष्पद्यते) स्थित होता है (स उत्तमः पुरुषः) वह उत्तम पुरुष है (तत्र) उस अवस्था में (इदं शरीरं) यह शरीर (उपजनं) जिसमें यह जन्मा था (स्मरन्न) उसको स्मरण न करता हुआ (सः) वह (जक्षन्) प्रसन्न होकर (स्त्रीभिः) सुन्दर स्त्रियों

अर्थात् अप्सराओं के साथ (वा) अथवा (मानैः) सुन्दर विमानों के साथ (वा) अथवा (ज्ञातिभिः) सुन्दर अत्यन्त स्वरूप वन्त (ज्ञाति) अर्थात् मित्रों के साथ (क्रीड़न्) क्रीड़ा करता हुआ (रममाणः) रमण करता हुआ (पर्य्येति) सर्वत्र विचरता है (हे इन्द्र यथा आचरणे) जैसे रथ में (प्रयोग्य युक्त) घोड़ा जुड़ा हुआ होता है (एव मेव) जैसे ही (सोऽयं) वह यह (प्राण) जीव (अस्मिन् शरीरे) इस शरीर में (युक्तः) जुड़ा हुआ है तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रथ या वग्गी को घोड़ा खींचता है इसी प्रकार इस शरीर को प्राण खींचता है।

अथ यत्रै तदाकाश मनु विषण्णं चक्षुः

और जहाँ यह चक्षु आकाश में अनुगत है।

स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुः।

वह चाक्षुष पुरुष है उस पुरुष के दर्शन के लिए चक्षु है।

अथयो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा।

और जो इसको सूंघूं यह जानता है वह आत्मा है। "**गन्धाय घ्राणं**" उस गन्ध के ग्रहणार्थ घ्राणेन्द्रिय है "**अथ यो वेदेद मभी व्याहराणीति स आत्मा**" और जो इसको बोलूं यह जानता है वह आत्मा है "अभि व्याहाराय वाक्" उसके भाषणार्थ वागिन्द्रिय होता है "**अथ यो वेदेदं श्रवणानीति स आत्मा**" और जो इसको श्रवण करूं यह जानता है वह आत्मा है "श्रवणाय श्रोत्र" उस आत्मा के सुनने के लिए श्रोत्र हैं, "अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा" और जो इसका मनन करूं यह जानता है वह आत्मा है "**मनोऽस्य दैवं चक्षुः**" इस आत्मा का मन ही दिव्य चक्षु है।

सवा एषएतेन दैवेन चक्षुषा मन सैतान् कामान् पश्यन् रमते

वह यह आत्मा इस दिव्यचक्षु रूप मन से ही इन कामनाओं को देखता हुआ रमण करता है,

यः एते ब्रह्मलोके तंवा एतं देवा आत्मान मुपासते ।

जो यह देवता लोग निश्चय करके उस ब्रह्म लोक में आत्मा परमात्मा की उपासना करते हैं ।

तस्मात्तेषां सर्वेंच लोकाआत्ताः सर्वेंच कामाः

इसी कारण उन देवों को सब लोक और सब कामनायें प्राप्त होती हैं, "**स सर्वा ँ श्चलोका नाप्नोति**" वह सब लोक लोकान्तरों को पा लेता है, "**सर्वा ँ श्चकामान्**" और सब कामनाओं को प्राप्त होता है, "**यस्त मात्मान मनुविद्य विजानाति**" जो उस आत्मा को खोजकर जानता है "प्रजापति-रुवाच" यह प्रजापति ने उपदेश किया तदनन्तर आत्मज्ञानी प्रसन्नचित्त होकर इन्द्र कथन करता है

श्यामाच्छवलं प्रपद्ये शवलाच्छ्यामंप्रपद्ये अश्व यव रोमाणि विधूय पापं चन्द्रइव राहो मुखात् प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभि सम्भवामीत्यभि सम्भवामीति ।

(श्याम) अर्थात् हार्द ब्रह्म से (शवलं) अर्थात् शवल विराट् ब्रह्मको (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं और (शवलात्) उपाधि विशिष्ट शवल ब्रह्म से (श्यामं) शुद्ध ब्रह्म को (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं (अश्वइवर रोमाणि) जैसे घोड़ा अपने रोमों को कम्पा-यमान कर अर्थात् झाड़कर निर्मल हो जाता है और (राहु मुखात् इव) जैसे राहु अर्थात् पृथ्वी की आड़ से (प्रमुच्य) मुक्त होकर चन्द्रमा चमकता है अर्थात् निर्मल हो जाता है इसी प्रकार (पापं विधूय) पापों से पृथक् होकर अर्थात् पाप को छोड़ कर (कृतात्मा) कृतार्थ हुआ (शरीरं धूत्वा) शरीर को

त्याग कर (अकृतं) क्रिया रहित नित्य (ब्रह्मलोकं) ब्रह्म लोक को (अभि सम्भवामीति) सर्वात्मा होकर प्राप्त होता हूं और भी कहा है

आकाशो वै नाम, नामरूपयो निर्वहिता ते इदंतरा तद्ब्रह्म तदमृत्तं स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोऽहंभवामि ब्राह्मणानांयशो राज्ञांयशो विशांयशोहम नुप्रापत्सि सहाहं यशसां यशः श्वेत मदत्क मदत्कं श्येतं लिन्दुमाभिगां लिन्दुमाभिगाम् ॥

(वै) निश्चय करके (आकाश नाम) आकाश नाम ब्रह्म हो, (नाम रूपयोः) नाम और रूप का (निर्वहिता) निर्वाहक अर्थात प्रकाशक है, (ते) वे नाम रूप (इदंतरा) जिसके मध्य में वर्तमान हैं (तद्ब्रह्म) वह ब्रह्म है (तत् अमृतं) वह अमृत है (स आत्मा) वही आत्मा सबका अपना आपा वही आत्मा ब्रह्म सर्व व्यापक है (अहं) मैं (प्रजापतेः) उस प्रजापति के (सभां) सभा को अर्थात् शरण को (वेश्म प्रपद्ये) प्राप्त होकर अपने परमानन्द स्वरूप को प्राप्त हो जाऊं (यशः अहंभवामि) मैं सबका यश हो जाऊं अथवा मैं यशस्वी होऊं (ब्राह्मणानां यशः) ब्राह्मणों के मध्य यश को (राज्ञांयशः) राजाओं के यश को (विशांयशः) वैश्यों में यश को (अनुप्रापत्सि) प्राप्त होऊं (सह अहं) वह प्रसिद्ध मैं (यशशां यशः) यशस्वियों के बीच यशस्वी हो जाऊं हे भगवन् (श्वेतं) स्वेत रक्त (अदत्कं) दन्त रहित अर्थात् यश बल बीर्य का नाश करने वाला (श्येतंलिन्दु) रक्तयोनिको (माभिगां) प्राप्त न होऊं प्राप्त न होऊ दोबारा पाठ उक्तर्थ की दृढ़ता के लिए है ॥ इस ज्ञान को पूर्व में ब्रह्मा ने प्रजापति को कथन किया और प्रजापति ने मनु को मनु ने प्रजाओं को यह उपदेश किया कि—

आचार्य कुलात् यथा विधानं वेद मधीत्य

आचार्यकुल से विधि पूर्वक वेद का अध्ययन कर।

गुरो अतिशेषेण कर्मभिः समावृत्य,

गुरु की अतिशय सुश्रुषा कर अपने कुटुम्ब में अथवा पवित्र देश में स्वाध्याय करता हुआ अन्य मनुष्यों को धार्मिक बनाता हुआ,

आत्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्य,

आत्मा में सब इन्द्रियों को स्थिर करके

अहिंसन् सर्व भूतानि अन्यत्र तीर्थेभ्यः

तीर्थों से अन्यत्र भी सर्व प्राणियों की हिंसा न करता हुआ जो विचरता है

सखल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोक मभि संपद्यते न स पुनरावर्तते

निश्चय करके इस प्रकार से आयु पर्यन्त वर्तता हुआ ब्रह्म-लोक को प्राप्त होता है फिर उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। इत्यादि विचारों से यही विस्पष्ट ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण वेदोपनिषिद द्वारा एक आत्मा का ही निर्देष किया गया है परन्तु अपार सुख स्वरूप परमेश्वर से अतिरिक्त इस आत्मज्ञान का प्रदाता कोई नहीं है और वही आत्मिक बल के देने वाला है सर्व विश्व सुषुप्ति अवस्था में उसके समीप पहुंचता है सब इन्द्रियें उसी मे प्रशंसनीय होती हैं जिसकी शरण में जाना अनन्य भक्ति द्वारा सब कुछ उसी को समझना उसके विना देखना सुनना छूना सूंघना कुछ भी नहीं है "**अयमात्मा सर्वेषां भूतानां लोकः**" यही परमात्मा सब भूतों का प्रकाशक अर्थात् सामर्थ्य देने वाला है इसका ज्यों का त्यों ही जानना मोक्ष है अन्यथा

जोव मृत्यु को प्राप्त होता है इन्द्र ने श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा आत्मा को साक्षात्कार कर लिया सो तो अमर हो गया। और विरोचन ने गुरु उपदेश को श्रवण तो किया परन्तु इंद्रियों को निरोध कर मनन और निदिध्यासन न करता हुआ अपने अनुयायियों सहित मृत्यु को प्राप्त होता रहा—याज्ञवल्क्य के दो भार्या थी मैत्रेयी और कात्यायनी, उनमें मैत्रेयी ब्रह्म वादिनी थी और कात्यायनी साधारण प्रज्ञा वाली स्त्री थी—यही उपदेश याज्ञवल्क्य जी ने सन्यास आश्रम में जाने लगे तब उन्होंने मैत्रेयी को कहा हे मेत्रेयी मैं इस ग्रहस्थाश्रम को छोड़ कर सन्यास धारण करना चाहता हूं इसलिये मेरा विचार है कि मैं सम्पूर्ण धन को तुझे और कात्यायनी को दे जाऊं "**साहोवाच मैत्रेयो**" यह मैत्रेयी ने कहा कि—

यत्र इय भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णास्यात

हे भगवान् यदि सम्पूर्ण पृथिवी धन से पूर्ण हो तो "**कथंते नामृता स्यामिति**" तो क्या मैं उससे अमृत मोक्ष लाभ कर सकती हूं' "**नेति हो वाच याज्ञवल्क्य**" याज्ञवल्क्य ने कहा नहीं। **यथैवोपकरणवंता जीवितं तथैवते जीवितं स्यात्।**

जिस प्रकार प्राकृतक पुरुषों का जीवन होता है उसी प्रकार तेरा होगा धन से मोक्ष की इच्छा न कर मैत्रेयी बोली

"येनाहंनामृतास्यां किमहं तेन कुर्याम्"

जिससे मैं अमृत को प्राप्त नहीं हो सकती उस धन से मेरा क्या प्रयोजन।

यदेव भगवन वेद तदेवमे ब्रूहि

जो आप जानते हैं सो मेरे प्रति कहें याज्ञवल्क्य बोला कि तू मुझे वास्तव में प्रिय है क्योंकि प्रिय कथन करती है अब ध्यान पूर्वक मेरे कथन को सुन। "**निदिध्यासस्व**" निदिध्यासन कर।

सहोवाच नवाअरे पत्युः कामाय प्रतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पति प्रियो भवति ।।

याज्ञवल्क्य बोले कि हे मैत्रेयि पति की कामना के लिये पति प्रिय नहीं किन्तु आत्मा की कामना के लिये पति प्रिय होता है।

नवा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ।।

भाषा—स्त्री की कामना के लिए स्त्री प्रिय नहीं होती किन्तु आत्मा की कामना के लिये स्त्री प्रिय होती है।

नवा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राःप्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवंति ।।

भाषार्थ—पुत्र की कामना के लिए पुत्र प्यारे नहीं, किन्तु आत्मा के लिए पुत्र प्यारे हैं।

वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं न भवति । पशूनां कामाय पशवः प्रिया न भवन्ति। ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं न भवति। क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं न भवति। लोकानां कामाय लोकाः प्रिया न भवन्ति। देवानांकामाय देवाः वेदानां कामाय वेदाः भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि न भवन्ति। न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वंप्रिय भवति, आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।

स्त्री की कामना के लिए स्त्री प्यारी नहीं होती किन्तु आत्मा के लिए स्त्री प्यारी होती है। एवं पुत्र, वित्त, पशु, ब्राह्मण, क्षत्री, लोक, देव, वेद सम्पूर्ण प्राणी आत्मा के लिए प्यारे होते हैं। सब सब की कामना के लिए प्यारे नहीं होते हैं किन्तु आत्मा के लिये सब प्यारा होता है।

आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्।

आत्मा को देखना चाहिए, सुनना चाहिए, मनना चाहिए, निदिध्यासन करना चाहिए। अरे मेत्रेयी आत्मा के देखने, सुनने, मानने, जानने पर यह सब जाना हुआ होता है।

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्र आत्मनो ब्रह्म वेद।

ब्राह्मणत्व उसको परे हटा देता है जो आत्मा से भिन्न ब्राह्मणत्व को समझता है।

क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्र अत्मनः क्षत्रं वेद।

क्षत्र उसको परे कर देता है जो आत्मा से भिन्न क्षत्रत्व को जानता है।

लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्र आत्मानो लोकान् वेद। एवं देवाः वेदाः भूतानि सर्वं तं परादाद् योऽन्यत्र आत्मनः वेद।

लोक, देव, वेद सब प्राणि उसको नीचे गिरा देते हैं जो आत्मा से अलहदा इनको जानता है।

इदं ब्रह्मेदं क्षत्रं इमे लोका इमे देवा इमानि भूतानि इदं सर्वं यदयमात्मा।

यही ब्रह्म क्षत्र लोक देव वेद भूत हैं जो यह आत्मा है।

आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

अरे आत्मा के दर्शन से, श्रवण से, मानने से, विज्ञान करके यह सब कुछ जाना जाता है।

अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपति सर्वेषां भूतानां राजा।

यह आत्मा सब भूतों का अधिपति और सब भूतों का राजा है।

(२४)

ऊँ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो वभूव ।
य इशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

अर्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राणी (निमिषतः) जागते (महित्वा) महिमा, शक्ति (एक) केवल, एकमात्र (इत) ही (राजा) स्वामी (जगत) जगत का (वभूव) हुवा है (य) जो (ईशे) राज्य करता है (अस्य) यह (द्विपदः) दो पैर वालों (चतुष्पदः) चार पैर वालों पर ।

भक्ति से हमें सुखस्वरूप परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए, जो अपनी महिमा से प्राणी, जंगम, जड़ का एकमात्र राजा है, और जो दो पग और चार पग वालों पर राज्य करता है । **इति अमर कथा प्रथम खण्ड ।।***

(२५)

ऊँ येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

अर्थ—(येन) जिसने (द्यौ) सूर्य लोक (उग्रा) गहन (पृथिवी) धरती (च) और (दृढा) स्थिर (येन) जिसने (स्वः) आल्हादक (स्तभितं) स्थापित (नाकः) मोक्ष धाम (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) जल को, प्रमाणुओं को (विमानः) बनाने वाला है (कस्मै) आनन्द स्वरूप (देवाय) ईश्वर को (हविषा) हृदय से (विधेम) ध्यान करें ।

हमें हृदय से आनन्दस्वरूप परमेश्वर का ध्यान करना

---

* पं० रघुनाथ स्वामि के सुपुत्र पं० राधेश्याम स्वामि से पता लगा कि दूसरा खण्ड, हस्तलिखित व छपी समस्त सामग्री, अलमारी में वर्षा का जल पहुंच जाने से नष्ट हो गई —श्री महाराज जी के अन्य उपदेशों में से संकलन करके चालू विषय की पूर्ति की गई है व्याख्या उपलब्ध नहीं हो सकी । दूसरे खण्ड की मंत्र निधि तो लोप ही हो गई । वें जाने ।

चाहिए, जिसने गहन सूर्यलोक, दृढ़ पृथिवी और आल्हादक मोक्ष धाम को स्थापित किया है और जो आकाश में परमाणुओं को बनाता है।

(२६)

ॐ प्रजापते न त्वदेतान्योन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

हे प्रजापते! तुझसे भिन्न इन उन सब उत्पन्नों को नहीं व्याप रहा (कोई दूसरा अध्यक्ष नहीं) जो कामनाएं लेकर तेरी उपासना करें हमारी वह पूरी हों, हम धनैश्वर्यों के स्वामी हों।

(२७)

ॐ स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥

वह हमारा बन्धु है, प्रादुर्भावित है (उत्पादक है) (सारे विश्व ब्रह्माण्ड का) वह विधाता है, वह समस्त धामों और भुवनों को जानता है (सबमें सर्वत्र रमा हुआ सदा सर्वदा सब कुछ जानता है, हमारा सुख-दुख पाप-पुण्य कहीं कुछ छुपा नहीं है, उससे कोई कुछ छुपा नहीं सकता) जहां विद्वान जन (जीवनमुक्त विदेह) अमृत आनन्दामृत पान करते हुए तीसरे धाम, तुर्य्या, सत धाम के ऊपर आनन्द धाम में विचरण किया करते हैं।

(२८)

ॐ अग्नेनय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहु राणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥

हे दिव्यस्वरूप, प्रकाशस्वरूप विज्ञान घन से सुख के लिए धर्मानुकूल मार्ग से समस्त प्रशस्त ज्ञानों को प्राप्त कराइये। सबको जानने वाले आप हम लोगों से कुटिलता रूप पापाचरण

को पृथक कीजिए। आपके सत्कार-पूर्वक प्रशंसा का सेवन करें।

***प्रार्थना मन्त्रा—ऊँ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥** (२९)

हे परमेश्वर, हे उत्पादक, सब बुराइयों को दूर करो। जो कुछ भलाई हो, वह हमें दे।

ऊँ यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविन कुरु स्वाहा॥ यजु० ३९-१४। (३०)

हे प्रकाशस्वरूप प्रभु, जिस सात्त्विक बुद्धि को विद्वान तथा रक्षक लोग प्राप्त होते हैं, उसी बुद्धि व धन से आज मुझे प्रशंसित बुद्धि वाला कीजिए। यह मेरी सत्य वाणी हो।

ऊँ द्विषो नो विश्वतो मुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम्॥ ऋ० मं० १ सू ९७। (३१)

हे सर्वज्ञ (विश्वरूप, सर्वत्र मुख वाले) हमको शत्रुओं में से सर्वथा पार कर, जैसे नौका समुद्र पार कराती है। हमारे पाप दूर कर।

ऊँ दृते दृहंमा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ यजु० अ० ३६-१८। (३२)

हे दुःख विनाशक परमेश्वर, मुझको बड़ा करो। मुझको मित्र की आंख से सब प्रजा देखे। मैं मित्र की आंख से सब प्रजा को देखूं। मित्र की आँख से हम देखें, अर्थात् मित्र होवें।

---

*(वेद मन्त्र स्वयंसिद्ध होते हैं इन मन्त्रों का अनन्य श्रद्धा मात्र से पाठ करना ही फलीभूत होता है।

ॐ यतो यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ (३३)

जहां कहीं से भी तू चाहता है (अर्थात् भय देखता है) वहीं से हमें निर्भय कर दे। हमारी सन्तान के लिए (पुत्र पौत्रादिक के लिए) मंगलकारी हो। हमारे पशुओं के लिए अभय हो।

ॐ ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये वागोजः सहजौ मयि प्राणापानौ ॥ (३४)

ऋग्वेद मेरी वाणी में वर्तमान हो (प्राप्त होवे), यजु मन में प्राप्त होवे। सामवेद प्राणों में प्राप्त होवे। वाणी तेजमयि हो। मेरे प्राण-अपान ओजसहित हों।

ॐ यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाचि तृष्णं (बृणं)। बृहस्पति में तद्दधातु, शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ (३५)

जो मेरी आंख में दोष (कमी त्रुटि) है, हृदय में, मन में, वाणी में बढ़ा हुआ है उसको बृहस्पति समाधान करे, मेट दे। भुवनों का पति बृहस्पति वह हमारे लिए कल्याणकारक हो।

ॐ नमस्ते हर्षे शोचिषे नमस्तेऽस्त्वर्चिषे। अन्यांस्ते स्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ (३६)

हर्ष देने वाले अग्नि देवता के लिए नमस्कार हो, लटा वालों के लिए नमस्कार हो। हमारा तेज अन्य (शत्रुओं) को तप्त करे। अग्नि देवता हमारे लिए कल्याणकारी हो।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनुभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ (३७)

हे पूजने वाले विद्वान् मनुष्यों, स्तुति करने वाले हम कानों से शुभ सुने, आंखों से शुभ देखें। दृढ़ अंगों से और शरीरों से जो आयु ईश्वर के अर्थ हो उसे पावें।

ऊँ रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नमस्कृधि । रुचं विश्वेषु-शूद्रेषु मयि धेहि रुचारुचम् ॥ ३८

हम ब्राह्मणों में प्रकाश भर दे, क्षत्रियों में प्रकाश भर दे, वैश्यों में प्रकाश भर दे, शूद्रों में प्रकाश भर दे (तथा) मुझमें अत्यन्त तेजस्वी प्रकाश भर दे।

ऊँ प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये ॥ (३९)

मुझे देवताओं में प्यारा बना दे, मुझे राजाओं में प्यारा बना दे, (मुझे) सब देखने वालों में, शूद्रों में और आर्यों में प्यारा बना दे।

ऊँ पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ॥

आप हमारे पिता हैं (पाति रक्षतीति पिता) हमको यथार्थ ज्ञान हो, और आपके लिए हमारा अनन्त बार नमस्कार हो, हमको अपने वियोग के दुःख से अर्थात् जन्म-मरण के दुःख रूप चक्र से हिंसा मत करो। **य० अ० १-३७ मं० २०** (४०)

ऊँ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं। ऊर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥ (यह मृत्युंजय मंत्र है, इसमें अर्थ की अपेक्षा नहीं—अनुष्ठान में मन्त्र से पहले "ऊँ हौं जूं सः, ऊँ भूः भुवः स्वः" और अन्त में इसे ही उलटा पढ़कर जपे)

हम तीन नेत्रों वाले, अच्छी गंध वाले, पुष्टि को बढ़ाने वाले (रुद्र, शंकर भगवान) की पूजा करते हैं। मैं आप अमृत द्वारा बन्धन मृत्यु से ऐसे छूट जाऊं जैसे ककड़ी, खरबूजा किरने पर नाकू से अपने आप पृथक हो जाता है। (४१)

ऊँ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्, पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रु वाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात् ॥

वह ज्ञानियों का हितकारी चक्षु, ज्ञान नेत्र ही, शुद्ध पवित्र पहले से ही वर्तमान उदित है (उस प्रभु की कृपा से) हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीयें, सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक प्रवचन करें, सौ वर्ष किसी के दीन न हों, और सौ वर्ष से अधिक आनन्द से रहें। य० अ० ३६ मं० २४। (४२)

ॐ तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयिधेहि, बलमसि बलं मयि धेहि, ओजोऽस्यो जोमयि धेहि, मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ (४३)

तू तेज है, मुझमें तेज धारण कर (भर दे)। तू वीर्य है, मुझमें वीर्य धारण कर। तू बल है, मुझमें बल धारण कर। तू ओज है, मुझमें ओज धारण कर। तू मन्यु (उत्साह) है, मुझमें उत्साह धारण कर। तू शक्ति है, मुझमें शक्ति धारण कर।

ॐ तनूपा अग्ने सि तन्वम्मेऽपाह्यायुर्दा अग्नेस्यायु मेंदेहि वर्चोदा अग्नेसि वर्चो मे देहि, अग्नेयन्मे तन्वा ऊनन्तन्म आपृण ॥ (४४)

हे अग्ने ! तू शरीर की रक्षा करने वाला है, तू मेरे शरीर की रक्षा कर। हे अग्ने ! तू आयु को देने वाला है तू मुझे आयु दे। हे अग्ने, तू तेज को देने वाला है, तू मुझे तेज दे। हे अग्ने ? मेरे शरीर में जो भी कुछ कमी है तू उसे भर दे (पूरी कर दे)।

ॐ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तराधरादभयं नो अस्तु ॥

अन्तरिक्ष हमारे लिए अभय करे। द्यौ और पृथिवी ये दोनों हमें अभत करें। पीछे अभय हो, सामने, ऊपर और नीचे हमारे लिए अभय हो। अ० १९-१५-५। (४५)

ॐ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं

नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥
अ० १९-१५-६ (४६)

मित्र से अभय हो, अमित्र से अभय हो, ज्ञात (विषय) से अभय हो, परोक्ष (विषय) से अभय हो, रात्रि अभय हो, दिन अभव हो, सब दिशायें मेरी मित्र हो।

ॐ असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्यातिर्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमयेति ॥ (४७)

हे प्रभु ! असत्य से मुझे सत्य की ओर ले जा; अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जा; तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले जा।

ॐ नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ (४८)

शान्तिप्रद और सुखस्वरूप देव को नमन, कल्याणकारी और सुखकारी देव को नमन, मंगलमय और अधिकाधिक मंगलकारी देव को नमन।

ॐ द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्र्मिविश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शन्तिरे वशान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥

द्युलोक में शान्ति है, अन्तरिक्ष में शान्ति है, पृथिवी में शान्ति है, जलों में शान्ति है, औषधियों में शान्ति है, वनस्पतियों में शान्ति है, सब देवों में शान्ति है, ब्रह्म में शान्ति है, सबमें शान्ति है, शान्ति ही शान्ति है वही शान्ति मुझे में अधिकाधिक बढ़े। (४९)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ (५०)

ओ३म् वह परब्रह्म पूर्ण है और यह कार्यब्रह्म (जगत्) भी पूर्ण है। क्योंकि पूर्ण से पूर्ण की उत्पति होती है। तथा (प्रलय काल में) पूर्ण (कार्य ब्रह्म) का पूर्णत्व लेकर (अपने में लीन करके) पूर्ण परब्रह्म ही बच रहता है। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवा वहै,
तेजस्विना वधीतमस्तु, मा विद्विषा वहै ॥ (५१)

वह परमात्मा हम (आचार्य और शिष्य) दोनों की साथ-साथ रक्षा करें। हम दोनों का साथ-साथ पालन करें। हम साथ-साथ विद्या सम्बन्धी सामर्थ्य प्राप्त करें। हम दोनों का पढ़ा हुआ तेजस्वी हो। हम द्वेष न करें। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

ॐ सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥ (५२)

हे जगदीश्वर ! हम परोपकार के लिए जो यह कर्म करते हैं सो आपकी कृपा से पूर्ण हो। यह कर्म आपको समर्पित है।

———

महाकाल निवारण-महादेवस्तोत्र (सत्य शब्द संग्रह से)

ओं नमो भगवते सदा शिवाय सकलतत्वात्मकाय सर्वमन्त्र स्वरूपाय सर्वयन्त्राधिष्ठिताय सर्वतन्त्रस्वरूपाय सवतत्व विदूराय ब्रह्मरुद्रावतारिणे नीलकण्ठाय पारवती मनोहर प्रियाय सोमसूर्याग्निलोचनाय भस्मोधूलितविग्रहाय महामणि मुकुटधारणाय माणिक्यभूषणाय सृष्टिस्थितिप्रलयकाल रौद्रावताराय दक्षाध्वरध्वंसकाय महाकालभेदनाय मूलाधारैक निलयाय तत्वातीताय गंगाधराय सर्वदेवाधिदेवाय षडाश्रयाय वेदान्तसारायत्रिवर्गसाधनाय अनन्तकोटिब्रह्मा ण्डनायकाय अनन्तवासुकीतक्षककर्कोटशंखकुलिकपद्ममहापद्मे त्यष्टमहानागकुलभूषणाय प्रणवस्वरूपाय चिदाकाशाय

आकाशादिकस्वरूपाव ग्रहनक्षत्रमालिने सकलाय कलक रहिताय सकललौकैककर्त्रे सकल लोकैकभर्त्रे सकललौकैक संहर्त्रे सकललौकैक गुरुवे सकल लौकैक साक्षिणे सकलनिगम-गुह्याय सकलवेदान्त पारगाय सकललौकैक वरप्रदाय सकल-लौकैकशंकराय शशांक शेखराय शाश्वतनिजावासाय निराभासाय निरामयाय निर्मलाय निर्लोभाय निर्मदाय निश्चिन्ताय निरहंकाराय निरंकुशाय निष्कलंकाय निर्गुणाय निष्कामाय निरुपप्लवाय निरवद्याय निरन्तराय निष्कारणाय निरान्तकाय निष्प्रपंचाय निःसंगाय निर्द्वंद्वाय निराधाराय निरागाय निष्क्रोधाय निर्भयाय निर्विकल्पाय निर्भेदाय निष्क्रियाय निस्तुलाय निःसंशयाय निरंजनाय निरूपमविभवाय नित्यशुद्ध-परिपूर्णसच्चिनानंदाद्वयाय परमशांतस्वरूपाय तेजोरूपाय तेजोमयाय जयजयरुद महारौद्रभद्रावतारमहाभैरव कालभैरव कालपांत भैरवकपाल मालाधर खट्वांग खंड चर्म पाशाकुंश डमरू शूल चाप वाण गदा शक्ति भिंदिपाल तोमर मुसल मुद्गर पाश परिघ भुशुंडी शतघ्नी चक्राद्यायुधभीषणकर सहस्रमुख दंष्ट्राकरालवदन विकटाट्टहास विस्फारित ब्रह्मांडमण्डल नागेंद्रहार नागेंद्रवलय नागेंद्रचर्मधर मृत्युंजय त्र्यंबक त्रितुरांतक विश्वरूप विरूपाक्ष विश्वेश्वर वृषबाहन विश्वतोमुख सर्वतो-मां रक्षरक्ष ज्वल ज्वल ममाभयं कुरु कुरु स्वाहा ओं क्रां शिवमहाकाल त्र्यंबक त्रिपुरान्तक सदाशिवनमस्ते नमस्ते। ओं क्रांशिवमहा कालार्पणमस्तु। ओं शान्तिः ! शान्तिः ! शान्ति !

गुरु मेरे राम मिलावन हार ॥टेक॥
परम उदार परम मंगलमय, अभिमत फल दातार ॥१॥
टूटी फूटी नाव पड़ी मम, भव वारिधि की धार ॥२॥
जयति जयति जयदेव दयानिधि, बेगि उतारो पार ॥३॥

दत्तात्रेय-अष्टदल कमल स्तोत्र— (पृष्ठ १०४ पर संकेतित)

मूलाधारे वारिज पत्रे चतुर श्रं, वं शं षं सं वर्ण विशालै सुविशालम्। रक्तवर्णं श्रीगणनाथं भगवन्तं, दत्तात्रे यंश्रीं गुरु मूर्ति प्रणतोस्मि ॥१॥

स्वाधिष्ठानें षड दलपत्रेतनुलिगं, बालंबीजंवर्णविशालै सुविशालम्। पीतंवर्णं वाक्यति रमणं द्रुहिणंत, दत्तात्रेय·····॥२॥

नाभौ पद्म पत्र दशार्हं डफवर्णं, लक्ष्मी कांतं गुरुडारूढं नरवीरम्। नीलं वर्णं निर्गुण रूपं निगमान्तं, दत्तात्रेय ·····॥३॥

हृदि पद्मां के द्वादश पत्रे कठ वर्णं, शांबं शैवं पूर्णमयन्तं शशि वर्णम्। सुरगो स्थित्वा कुंकुं वर्णं शिव शक्तिं, दत्तात्रेयं···॥४॥

कंठ स्थाने चक्र विशुद्धे कमालान्ते चन्द्राकारे षोडश पत्रे सुर वर्णं। मायाधीशं जीव समेतं निज रूपं, दत्तात्रेयं·····॥५॥

आज्ञा चक्रे मृकुटि स्थाने द्वैदलांतं, हंक्ष बीजं ज्ञान निधानं गुरु-मूर्तिम्। विद्युद्वर्णं ज्ञान मयंतं नटलाक्षं, दत्तात्रेयं ·····॥६॥

मून्धिस्थाने वारिज पत्रे शशि वर्णं, शुभ्रं वर्णं पत्र सहस्रं सुविशालम्। ह्रीं बीजाक्षं वर्ण सहस्रं तूर्यंतं, दत्तात्रेयं·····॥७॥

शान्ताकारं शेष शयानं सुरवंद्यं, कान्तानाथं कोमलगातं कमलाक्षम्। चिन्तारत्न छिद्घन पूर्णं द्विज राज्यं, दत्तात्रेयं·····॥८॥

ब्रह्मानन्दं ब्रह्म मुकंदं भगवन्तं, ब्रह्मज्ञानं सत्यमनन्तं भवरुपम्। पूर्णं ब्रह्मानन्द मयन्तं तूर्यंतं, दत्तात्रेयं श्री गुरुमूर्ति·····॥९॥

———

[**गुरु स्मरण**—हमारे गुरु ने ज्ञान गठड़िया खोली ॥टेक॥] २

उत्तराखण्ड आदि से लाये कई वस्तु अनमोली।
कुरुक्षेत्र कश्मीर भ्रमण कर घर कांटे पर तोली ॥१॥
केसर क्षमा सुमति कस्तूरी दया सुगन्धित रोली।
सत रूपी गोरोचन इसमें भक्ति विजिया घोली ॥२॥

लख सद्गुरु का लक्ष श्रवण सुन उनकी मधुरी बोली ।
ग्राहक आये दूर दूर से बांध बांध कर टोली ।।३।।
कई अजान पुरुष परदेशी कई हमरे हम जोली ।
सबको मिला प्रसाद भजन का जिन कि न श्रद्धा डोली ।।४।।
कई राक सत्पुरुषों की थोड़े में ही तृप्ति होली ।
गुरु कृपा से यह जन मोहन लायो भरकर झोली ।।५।।

———

[गुरु स्मरण—रात दिन रहते मगन आनन्द के वो बीच में] ३

और सब को रखते थे आनन्द के वो बीच में ।।टेक।।
भोर ही उठ कर के वो ओंकार धुनि उच्चारते ।
और फिर हर हर महादेव दिव्य नाद गुंजारते ।।
उस समय होते अति आनन्द के वो बीच में ।।१।।
धुन सुनत ही तुरत हम सब दर्शनों को दौड़ते ।
न्हाते धोते भागते सब काम पीछे छोड़ते ।।
दर्श कर हो जाते सब आनन्द के हम बीच में ।।२।।
उन का एक अद्भुत निराला दिव्य ही सत्संग था ।
रात दिन हरि कीर्तन नित बरसता हरि रंग था ।।
जिस से रहते थे सभी आनन्द के हम बीच में ।।३।।
हर समय दंगल वो मंगल नित्य हरि गुण गान था ।
उन को हम सब का निरन्तर प्रेम था और ध्यान था ।।
इस से रहते थे सदा आनन्द के हम बीच में ।।४।।

———

पुस्तक प्राप्ति स्थान—पृष्ठ ५० पर देखे ।

जींद आश्रम से मिलने वाली पुस्तकें

१. श्री परमानन्द स्मृति कण
२. सार संग्रह—सदाचार
३. श्री परमानन्द सदुपदेश
४. ज्ञान धर्मोपदेश
५. श्री परमानन्द वैदिक सदुपदेश
६. सत्य शब्द संग्रह
७. भक्ति ज्ञान योग संग्रह
८. गायत्री-प्रार्थना

श्रीमहाराजजी शरीर त्याग से ५-६ मास पहले आश्रम में भ्रमण करते यह षटपदी गाया करते थे।

ममात्मा परमात्मा विश्वात्मा विश्वस्वरूप।
ब्रह्मात्मा सर्वात्मा सूर्यात्मा ज्योति स्वरूप।
अखण्डात्मा पूर्णात्मा ज्ञानात्मा ज्ञान स्वरूप।
सुखात्मा चिदात्मा सदामा सत्यस्वरूप।
भावात्मा भवात्मा शून्यात्मा शून्यस्वरूप।
ज्ञातात्मा ज्ञेयात्मा ध्येयात्मा ध्यानस्वरूप॥

दैहिक लीला के संवरण से कुछ दिन पूर्व, एकान्त में "ज्योतिरहं ज्योतिरहं" की ध्वनि और तभी का बनाया यह शब्द उन महान पुरुष के "आनन्द के बीच में" स्वयं प्रकाश व ब्रह्म लीन स्थिति की झलक है।

लहरा रही है ज्योति चिदानन्द की (परमानन्द की) ॥ टेक॥
सकल ब्रह्माण्डों के पृष्ठ भाग पर,
सत्ता स्फुर्ति सबको दे रही है निजानन्द की॥ १॥
सारे विश्व के बाहर भीतर, हृदय कमल में सूर्यमण्डल में।
जगमगा रही है ज्योति महानन्द की॥२॥
यह संसार असार है अन्तिम, एक हो ज्योति है अखण्डानन्द की॥३॥
सूर्य चाँद विद्युत् और तारे, अग्नि ज्योति है भवानन्द की॥४॥
ज्योति बिना कुछ और नहीं है, अहं ज्योति है ज्ञान वही है॥
अहं ब्रह्मास्मि ज्ञान की ज्योति, जग रही घट २ परमानन्द की॥५॥

(एक बार भगवान के नाम लिखने लगे तो यह भजन बन गया)

आरती—हरि नारायण हरि नारायण, नारायण हरि ओम्॥टेक॥
भव दुःख हारण सब सुख कारण पतित उधारण प्रभु ओम्॥१॥
शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूपा अगम अरूपा शिव ओम्॥२॥
निगम निरूपा सुर नर भूपा ज्योति स्वरूपा प्रभु ओम्॥३॥
अनन्त अपारा पार न वारा निराधारा हरि ओम्॥४॥
ब्रह्म विकाश स्वयं प्रकाश जगन्निवास स्वामी ओम्॥५॥
राम गोविन्द परमानन्द कृष्ण मुकुन्द गुरु ओम्॥६॥

श्रीमद्भक्ति [illegible] रेवाड़ी व जींद

[illegible] के उद्देश्य

१. श्री भगवान् की भक्ति का प्रचार करना।
२. गोरक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना।
३. जंगलों में वृक्ष लगवाना और उनके बीच में जलाशय बनवाना।
४. शिक्षा का प्रचार करना जिससे मनुष्य मात्र विद्या लाभ कर सके, और प्राचीन प्रथा को फिर प्रचलित करना।
५. बिमारियों के अवसर पर दवाई बँटना।
६. आसपास के ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा, शान्ति और प्रेम बढ़ाना।
७. सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जागृत करना।
८. राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

मनुष्य मात्र के लिए साधारण नियम

१. मनुष्य का पहला कर्तव्य है कि सद्गुरु की शरण में जावे और उनकी कृपा सम्पादन करने के लिए शुद्ध चित्त से उनकी सेवा करे।
२. उन सद्गुरु के वचनों पर दृढ़ विश्वास रक्खे।
३. एक ही मत मार्ग का अनुसरण करे।
४. साधु सज्जन का सत्संग करे।
५. विषयों के आधीन न हो।
६. शत्रुओं को मित्र बनावे।
७. अविद्या न बढ़ावे।
८. [illegible]
९. [illegible]
१०. [illegible] पर दृढ़ आस्था रखे।

मुद्रक : [illegible]